रामाश्रम सत्संग डिजिटल प्रकाशन

संत-प्रसादी

(भाग-14)

परम संत

डा. करतार सिंह जी महाराज

के प्रवचनों का संकलन

रामाश्रम सत्संग (रजि.)

9-रामाकृष्ण कॉलोनी, जी. टी. रोड,

गाजियाबाद-201009 (उ.प्र.)

प्रस्तावना

हम सब के लिए अत्यन्त हर्ष का विषय है कि रामाश्रम सत्संग के डिजिटल प्रकाशनों की श्रंखला में पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों का संकलन - संत प्रसादी भाग 14 प्रकाशित हो रहा है.

मेरा ऐसा मानना है कि हम सबको गुरुदेव के प्रवचनों की जो अमृत वर्षा हो रही है उससे प्रेरणा लेकर अपने जीवन को वैसा बनाने का प्रयास करना चाहिए जैसा पूज्य गुरुदेव हमें बनाना चाहते थे. इस संकलन के प्रकाशन में ग्वालियर के प्रोफेसर आदर्श किशोर सक्सेना द्वारा दिए गए सहयोग के लिए हम उनका धन्यबाद करते हैं.

पूज्य गुरुदेव के चरणों में प्रार्थना है कि उनकी अमृत-वाणी के प्रवाह को जन-जन तक पहुंचाने का अवसर हमें बार-बार प्राप्त होता रहे.

उम्मीद है कि सत्संग-परिवार को हमारा यह प्रयास पसंद आएगा .

- डा. शक्ति कुमार सक्सेना

विषय–सूची

1. अपनेजीवन को प्रेम-मय बनायें.....1

2. आचरण की नींव पर परमार्थ का मंदिर बनाओ.....9

3. ईश्वर कृपा का आभास (फैज़ का एहसास) साधक के तनिक से अभ्यास से संभव है.....13

4. ईश्वर के रहस्य को समझें और उसके अनुसार अपना जीवन व्यतीत करे.....18

5. ईश्वर तक पहुँचने का साधन -सोपान है : नाम जाप सुम 23

6. को कुछ है वो तेरा ही तो है 28

7. जलाशय रूपी संसार में कमल पुष्प जैसे रहना सीखें..... 31

8. तुम्हारा कर्तव्य है कि अपने आप को पोशीदा करके उसको ज़ाहिर कर दो.....34

9. परम आनंद की प्राप्ति के लिए तन-मन-धन से समर्पण है 38

10. परमार्थ पथ के सभी साधन सही हैं क़दम-क़दम बढे चलो लक्ष्य सबका 44

11. बिना भाव के भक्ति नहीं होती 51

12. भक्ति के अनेक रूप.....55

13. मनुष्य जीवन का सर्वोत्तम उपहार : विवेक बुद्धि.....57

14. संसार में रहते हुए हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिए?.....62

15. साधना के तीन अनिवार्य आयाम - निर्मलता, निवृति एवं ज्ञान प्राप्ति 66

16. "साधो सहज समाधि भली" - गागर में सागर हैं संत कबीर के पद 73

17. सावधान ! समय थोड़ा है और मानव चोला अमूल्य है 80

18. स्तुति करें तो ईश्वर की या गुरु की, निंदा करें तो अपने अवगुणों की.....85

अपनेजीवन को प्रेम-मय बनायें - प्रेमज्योति को सारे संसार में प्रकाशित करें

साधना कराने वाला विचार विमुक्त होकर बैठे . वह यह समझे कि मैं कुछ भी नही हूं. गुरुदेव की, ईश्वर की कृपा बरस रही है . आप भी विचारों से विमुक्त होकर कोशिश करते रहें कि मन जितना भी हो सके कम से कम भागे . दृढ़ता के साथ बैठें . गुरु और शिष्य में जो द्वेत का भाव है वह जाता रहे . यह ख़्याल नहीं करना है की हम दो हैं या एक . कबीर साहब कहते हैं कि " एक कहूं तो है नहीं , दूजा कहूं तो गार , जैसा है तैसा रहे कहै कबीर विचार . " यह द्वन्द है . मन ही तो कहेगा कि वह एक है . वह तो एक से अनेक हो जाता है . परमात्मा तो द्वेत से परे है इसलिए वह दो भी नहीं है . वह जैसा है वैसा ही रहता है , ऐसा कबीर दास जी कहते हैं . यह प्रश्न भी खतम हो जाता है कि प्रभु एक है या दो . ये सब भाव खतम हो जाते हैं . यदि गुरु यह ख़्याल करके बैठता है कि मैं गुरु हूँ तो सूफ़ी लोग कहते हैं कि ऐसे गुरु की गरदन काट देना चाहिये . शिष्य यदि यह भावना लेकर बैठता है कि मैं हीन हूं तो गलती करता है . सब भावनाओं से मुक्त होकर बैठना है . हमारे यहां का साधन प्रेम का साधन है . परमात्मा में अपने आप को लय कर देना है , इसमें द्वेत नहीं होता परन्तु थोड़े दिन के लिये एक दूसरे से प्रेम करते हैं , जिससे यह प्रेम बढ़ते बढते हमारा स्वभाव बन जाता है .हम अपने में गुरु का , परमात्मा का रूप देखें , हमारे कानों में जो स्वर पड़े वह ऐसा मालुम हो कि ॐ कार की ध्वनि है . सबमें वही ध्वनि है . ॐ , ॐ की आवाज़ है . अनहद शब्द की झंकार है . भीतर ही नहीं बाहर भी . भीतर में , बाहर में सब ओर ईश्वर ही ईश्वर दिखाई दे . जिव्हा से जो शब्द निकले वह मधुर शब्द निकलें , ईश्वर का प्रेम लिये हुए हों . हम जो भी व्यवहार करें वह दैवी गुणों को लेकर करें , अप्रयास हो , प्रयास न करना पड़े . यह सहज समाधि है . आंखें बंद हैं तब भी प्रेम है ,बात चीत कर रहे हैं उसमें भी प्रेम है , व्यवहार कर रहे हैं उसमें भी प्रेम है .

सारा संसार हममें समाया है और हम सारे संसार में समाये हैं . यह विश्व भावना हो जाती है . परमात्मा के साथ एकता होने पर सबके साथ एकता हो जाती है . महात्मा बुद्ध को क्या कष्ट था ? उन्होंने १८ बार जन्म लिया . वह ज्ञानी थे . जिसको आत्मा परमात्मा का ज्ञान होता है , उसे बुद्ध कहते हैं . परन्तु उनके भीतर तो व्याकुलता थी . संसार के दुःखों को देखकर वह दुःखी होते हैं और सोचते हैं कि कोई ऐसी आसान पद्धति मिल जाये जिसको पाकर संसार मेरी तरह बुद्ध बन जाय , ज्ञानी बन जाय , यानी जन्म मरण के बन्धन से छूट जाय , मृत्यु अवस्था का जो कष्ट होता है उससे छूट जाय . शारीरिक रोगों से बच जाय . आत्मिक कठिनाइयों से मुक्त हो जाय . प्रेम की राह बताते हैं . कभी हमने भी सोचा है कि हमारे पड़ोसी को आनन्द मिले , वह सुखी रहे . यह प्रेम की निशानी है . महात्मा बुद्ध के पास धन- दौलत है , सब सुःख हैं . परन्तु दुःखी हैं , चैन नहीं है . उन्होंने कितना कष्ट

उठाया , कितना तप किया , तब जाकर उन्होंने इस रास्ते को बताया . उनको एक पद्धति सूझी , पद्धति का मतलब है साधन , सरल साधन .

उनके हृदय में यह इच्छा थी कि संसार को कोई एक सरल रास्ता बतला दें जिससे निर्वाण प्राप्त हो सके, मोक्ष प्राप्त हो . यह विश्व -प्रेम है . यह हमारे जीवन का लक्ष्य है , हमारा आध्यात्मिक प्रेम है . प्रेम महान है , बहुत ऊँचा है . हमको इस बात से ही सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिये कि हम प्रातः सांय साधना में बैठ गये , कभी -कभी सत्संग में भी सम्मिलित हो गये . यह प्रेम साधना नहीं है . हमारे इस वंश के महापुरुषों की यह विशेषता है , सुन्दरता है , बरकत है कि जितना प्रेम इस सत्संग में पाया जाता है वह बाहर नहीं है . परन्तु इस प्रेम ज्योति को सारे संसार में प्रकाशित करना होगा. यह केवल मेरा ही काम नहीं है . मैं यह नहीं कहता कि मैं यह नहीं कर सकता . पर यह काम आप सबका है . काम का मतलब यह नही कि आपको किसी मंच पर जाकर प्रवचन देना होगा या प्रचार करना होगा. आपको अपने जीवन को प्रेम -मय बनाना होगा . आपके सम्पर्क में जो भी आए , उसके साथ आपका जो भी व्यवहार हो , प्रेम -मय हो , उसमें ईश्वर के प्रेम का विकास हो . घर में कुछ रूप है , दफ़्तर में , क्लब में , राजनीति में कुछ और रूप हैं . ऐसा व्यक्ति साधना का जो लक्ष्य है ' प्रेम ' उसका अधिकारी नहीं बन सकता . एक ही रूप होना चाहिये . मैं राजनीति में जाने को मना नहीं करता . महात्मा गाँधी की तरह आत्मिक शान्ति प्राप्त कर उसकी सुगन्ध फैलाइए . कितनी वेदना , कितनी उत्तेजना मिली महात्मा गाँधी को पर उन्होंने अपने आदर्श को नहीं छोड़ा .

हमें भी चाहिये कि हम परिवार में रहें , दफ़्तर में रहें या अन्य किसी स्थान पर जायें , हमारा व्यवहार प्रेम का हो . प्रेम की ज्योति प्रकाशित रहे . आप सबको अगरबत्ती की तरह बनना है . अगरबत्ती अपनी सुगंधि चारों और फैलाती है . इसी तरह आप हम सबको अपने प्रेम को चारों ओर फैलाना है . हमारा अन्तिम लक्ष्य प्रेम है , आत्मिक प्रेम . प्रेम ही परमात्मा है . " love is God and God is love. "

हम प्रेम में स्थित रहें . संसार की आंधियाँ आयें , दुःख -सुःख आयें , परन्तु हमारे भीतर की स्थिति स्थिर रहे . आप प्रेम की सुगंधि में विपरीत स्थिति में भी स्थिर रहें . महात्मा बुद्ध ने इस स्थिति को दो भागों में बांटा है . कोई संस्कार न हो , कोई विचार न हो . यह प्रेम का , मोक्ष का स्वरूप है . यह प्रेम भक्ति के बिना प्राप्त नहीं हो सकता. प्रेम के लिए सन्तोष , सहनशीलता , सत्यता की आवश्यकता है .

साधना के साथ -साथ महापुरुषों की वाणी , उनके जीवन चरित्र का भी अध्ययन करना चाहिये , उन पर विचार करना चाहिये . वास्तव में यदि गुरु के साथ सच्चा प्रेम है तो कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं है . पूज्य लाला जी महाराज (आचार्य दिगन्त महात्मा रामचंद्र जी महाराज) ने पूज्य गुरुदेव (परमसंत महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज) से गीता पढ़ने के लिए कहा . गीता लाई गई . एक दो दिन गीता का उपदेश दिया , फिर कहने लगे छोड़ो , भीतर की गीता पढ़ो . यह उन लोगों के लिये है जो अपना पूरा जीवन गुरु के लिए न्यौछावर कर देते हैं . उनके लिए तो यह बात सरल है . परन्तु सामान्य व्यक्ति के लिए बड़ा कठिन है . गुणों को धारण करना है , महापुरुषों की वाणी को पढ़कर उस पर विचार करना है . ईश्वर का गुणगान करना है . यही तो परमार्थ है . यह कहना कि गुरु करेगा , ऐसा नहीं . या तो हम

अपने आप को गुरु पर पूर्णतः न्यौछावर कर दें , नहीं तो बीच का रास्ता अपनायें . भक्ति को भी अपनायें , इन नियमों का पालन करें और ज्ञान भी प्राप्त करें .

एक महापुरुष से एक भक्त ने पूछा कौन सी साधना करनी चाहिये ? साधक की जैसी वृत्ति हो , जिस प्रकार के उसके संस्कार हों , व्यवसाय हो , उसके अनुसार वह आचार - व्यवहार को अपनाये , भक्ति जितनी हो सके करे . तब जाकर वह प्रेम के आयाम में प्रवेश पा पायेगा ,उससे पहले नहीं .

यह प्रेम का रास्ता है . मीरा जी का प्रेम देखिए . सब कुछ न्यौछावर कर दिया उस सांवले सलौने भगवान पर . जो मीरा जैसी या हनुमान जी जैसी या अन्य महापुरुषों जैसी साधना नहीं कर सकते वे साधारण साधन अपनायें जैसे आचार - व्यवहार सुधारना , भक्ति करना और बुद्धि का सदउपयोग करना . चाहे आचार -व्यवहार हो, चाहे भक्ति , बुद्धि, ज्ञान की साधना हो , अपने गुरु पर विश्वास करना चाहिये . जैसा वह कहें वैसा करना चाहिये . वह आपको बतला देंगे कि आपको किस प्रकार का साहित्य पढ़ना चाहिये . यदि शेष सब ठीक है , केवल प्रेम उत्पन्न नहीं होता , जब सत्संग में बैठते हैं तो चक्षुओं में अश्रु प्रगट नहीं होते तो ऐसे भाइयों के लिए उचित होगा कि वे प्रेमी लोगों का संग करें . मीरा जी, सूरदास जी के भजन , उनका जीवन चारित्र पढ़ें . गुरु अंगद देव जी ने कोई साधना नहीं की केवल अपने इष्टदेव गुरु नानक देव जी की सेवा की ,उनका आज्ञा पालन किया , अपने को गुरु के समर्पित किया .

भगवान दक्षिण मूर्ति के पास जो भी जिज्ञासु आता थ , वह मौन रहते थे , बोलते नहीं थे . जिज्ञासु को कहा जाता था कि वह भी मौंन होकर बैठ जाय . ईश्वर कृपा या गुरु कृपा जो मौंन में होतीं है वह प्रवचनों द्वारा नहीं होती . प्रवचनों से मार्गदर्शन तो मिलता है , कुछ रस भी मिलता है परन्तु वास्तविक अनुभूति , वास्तविक ज्ञान मौंन से ही मिलता है . बाहर का मौंन महत्वपूर्ण है परन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण है अन्दर का मौंन . मौन के द्वार से गुज़र कर ही हम आत्मा के द्वार तक, परमात्मा के पास तक पहुँच सकते हैं . तो प्रयास करना चाहिये कि सत्संग में बैठे हों , या सत्संग न हो रहा हो , मौन रहने का अभ्यास करें . आन्तरिक मौन रहने का अभ्यास करें , इससे एक असीम शक्ति उदय होती है . जो व्यक्ति हर वक़्त बोलता रहता है वह जो भी बोलेगा वह सही नहीं होगा . जो व्यक्ति कभी -कभी बोलता है और भीतर में शान्त रहता है वह जो भी बोलेगा वह सही बोलेगा . इसलिए आन्तरिक मौन का जितना भी अभ्यास हो सके करना चाहिये .

भीतर में आपका मन आपके इष्टदेव के चरणों मे लगा हुआ है . बस इतना ही करना है . आगे चलकर यह भी छूट जाता है . जाप भी छूट जाता है . केवल मौन रहता है . यदि ईश्वर की कृपा हो जाय तो आत्मा की अनुभूति हो जाती है . इस मौन के लिए प्रयास नहीं किया जाता . जहाँ प्रयास होगा वहाँ मन होगा . जब हम पूर्ण रूप से अप्रयास हो जाते हैं , तब भगवान आते हैं . जब हम दीन होकर , बलहीन होकर , अपने आप को प्रभु के चरणों में समर्पण कर देते हैं , कुछ

आशा या इच्छा नहीं रखते , तब ईश्वर की कृपा होती है . हो सकता है कि किसी पर पहले हो जाय और किसी पर बाद में हो . परन्तु होती है अवश्य. उसकी

कृपा , उसका फैज़ प्रतिक्षण हम पर बरस रहा है . मौन रहना बहुत कठिन है . ईश्वर के निराकार रूप की अनुभूति केवल मौन में ही हो सकती है . " जाप मुआ,अजपा मुआ , अनहद हूं मर जाय ."

कबीर साहब कहते हैं कि जो जाप है , भगवान का नाम है , जो अजपा है , अप्रयास हो रहा है . भीतर में जो अनहद के शब्द हैं वो भी ईश्वर के प्रेम में लय हो जाते हैं . आत्मा जो हमारे शरीर में है , वह परमात्मा में लय हो जाती है . फिर मनुष्य जन्म मरण के बन्धन से छूट जाता है .

जो ऊँचे अभ्यासी हैं वे जो भी साधना करते हैं उसके साथ -साथ मौन की साधना का अभ्यास भी बढ़ाते जाते हैं . जितना भी मौन साध सके . भीतर का मौन . इसका मतलब यह नहीं है कि हमने तो मौन रखा है , वैसे तो हम नहीं बोलते , क़लम दवात ली और कागज़ पर लिख दिया . मगर भीतर में संकल्प-बिकल्प उठ रहे हैं . मौन का मतलब है निर्विचार , कोई संकल्प नहीं . कुछ भी नहीं , कोई बुरा विचार नहीं , कोई अच्छा विचार नहीं .

यह कब होता है , जब साधक अपने आपको ईश्वर के चरणों में समर्पित कर देता है . self surrender यानी अपनी कोई इच्छा नहीं रखता , अपनी कोई आशा नहीं रखता . कोई भी घटना घटित होती है , यदि प्रतिकूल है तो भी प्रसन्न है . यदि अनुकूल है तो प्रसन्नता के भाव नहीं रखता . तो मौन का भाव है कि अपनी कोई इच्छा न रहे . यही मौन जाकर आत्मा में लय हो जाता है . जितना समय मिले , जितना आप रह सकते हैं , उतना मौन रहिए . इसका प्रयास करने से आपकी वाणी में शक्ति आयेगी . आप जो बोलेंगे गलत नहीं बोलेंगे . जब ज़रूरत हो बोलो और अन्दर में लय हो जाओ . गुरुदेव के चरणों में मन लगा रहे . मन जो है वह प्रभु ने एक बड़ा विचित्र उपकरण दिया है . इसको अपने अधीन करना हैं . हम इसके अधीन न हों . जब चाहें इसका उपयोग कर लें , जब चाहें इसे मौन कर लें . इसको ऐसा साधा जाय कि यह शान्त बैठा रहें . परन्तु हमारे भीतर में क्या होता है ? चारों ओर भाग दौड़ ,अशान्ति . ऐसा व्यक्ति शान्ति कैसे पा सकता है ? तो मौन की साधना करनी होगी . हमारी सम्यक बोली होनी चाहिये . ऐसी बोली निकालिये जिससे किसी को हानि न हो , दुःख न पहुँचे .

प्रमादी न बन जायें , सुस्त न हो जायें . भगवान कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया कि वीर बनो . इस संसार रूपी कुरुक्षेत्र में वही व्यक्ति लड़ सकता है जो वीर है . वह भोजन करें जिससे शरीर स्वस्थ रहे . खाना पौष्टिक हो , जल्दी पचने वाला हो . उतना खाओ जिससे शरीर स्वस्थ रहे और ईश्वर का भजन भी हो सके . कम सोओ . नींँद भी उतनी लीजिए जिससे आपके शरीर को आराम मिले . इतना मत सोओ कि आप प्रमादी बन जायें . संसार के प्रति आप अपने दायित्व भूल

जायें . इतना भी न जागें कि आपके दिमाग़ में खुश्की हो जाये . जितना शरीर को आवश्यक है उतना अवश्य सोना चाहिये. दृढ़ योग नहीं करना चाहिये . दृढ़ योग करने से बहुधा बीमारियां उत्पन्न हो जाती हैं .

महर्षि रमन बहुत कम बोलते थे . जो भी जिज्ञासु उनके पास जाता था , वह भी चुप करके बैठ जाता था . अपने प्रश्न मन में रख लेता था , क्योंकि संसार में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसके मन में दुविधा न हो . उनके पास बैठने से जो भी प्रश्न होते थे , उनके उत्तर स्वयं बिना बोले मिल जाते थे . आप भी करके देख सकते हैं . चाहें आप सन्त के पास बैठें , चाहें परमात्मा की सेवा में बैठें , चुप करके बैठ जाइए . १०,१५,२० मिनिट मौन होकर बैठ जाइए . जो भी प्रश्न आपके हैं , उनके उत्तर आपको मिल जायेंगे .

गीता हमें सिखाती है कि हमारे भीतर में आसक्ति न हो . अनासक्त जीवन व्यतीत करने की कोशिश करें . महात्मा गान्धी ने गीता का जो अनुवाद किया है उस पुस्तक का नाम ही उन्होंने अनासक्त योग रखा है . गीता का सार ही यह है कि हम मोहग्रस्त न हों . यह बात कहने में तो सरल लगती है परन्तु हमारा जीवन इतना मोहग्रस्त हो गया है कि हम इससे मुक्त नहीं हो पा रहे हैं .

कबीर साहब कहते हैं कि "मेरा मुझमें कुछ नहीं ,जो कुछ है सो तोर, तेरा तुझको सोंपते क्या लागत है मोर". यही गीता का उपदेश है . मेरा कुछ भी नहीं . जिस शरीर के साथ मेरा सम्बन्ध है, वह शरीर भी तो मेरा नहीं . धन दौलत भी मेरी नहीं . विचार भी मेरे नहीं . हम यह जानते भी हैं कि हमारे साथ कुछ भी नहीं जायेगा . तब भी हम यहीं समझते हैं कि संसार में जो कुछ भी है सभी हमारा है . अज्ञान के कारण हम मोहग्रस्त हो रहे हैं .

इसीलिये भगवान अर्जुन से कहते हैं कि अज्ञान का त्याग करो , अभिमान का त्याग करो और मोह का भी त्याग करो .आत्मस्थित होकर अथवा परमात्मा में लय होकर , इस धर्मक्षेत्र में वीर बनकर , साहसी बन कर , इस संग्राम में जूझना चाहिये . यह जीवन एक संग्राम है . वही जूझ सकता है जो वीर है , जिसमें आसक्ति नहीं है . अर्जुन जैसे वीर मूर्छित हो जाते हैं . आपका और मेरा कहना ही क्या है ? छोटी सी तक़लीफ़ आ जाती है तो हम अपने आप को भूल जाते हैं , गीता के उपदेश को भूल जाते हैं . भगवान राम की मर्यादा और उनके उपदेश भूल जाते हैं .

भगवान अर्जुन से कहते हैं - हे वीर ! मेरे मित्र , और कुछ मत करो , कर्म और कर्मफल में आसक्ति का त्याग कर दो . मुझमें , मेरे चरणों में समर्पण कर दो . कर्म फल को भी मेरे ही चरणों में समर्पण कर दो . तुम तनिक भी आसक्ति न रखो . तुम क्यों चिन्ता करते हो , मैं तुम्हारी चिन्ता करुँगा .

बच्चा है . माँ की गोद में जाता है अचिन्त होकर , निर्भय होकर . तुम बच्चे की तरह रहो . माँ के रहते हुए क्या बच्चा भय खाता है ? क्या उसको भविष्य का कोई भय या चिन्ता होती है ?. वह माँ की गोद में आनन्द से रहता है . तुम भी अपने आप को मेरे में लय कर दो . मेरे में लय क्या करोगे ? यह जो पाँच तत्व और तीन तत्व हैं, मेरे में लीन कैसे होंगे

? लय केवल आत्मा हो सकती है परमात्मा में . भगवान समझा रहे हैं कि ये पंचतत्व और तीन गुण हैं ये नश्वर हैं ,अस्थाई है . इनको छोड़ो . आसक्ति का त्याग करो , सत्यता की अनुभूति करो . आत्मा को परमात्मा में लय करके तुम सदा के लिए अमर हो जाओ , मोह रहित हो जाओ .

जितने भी महापुरुष हुए हैं उन सब ने हमें अपने जीवन से शिक्षा दी है कि हम किस प्रकार अनासक्त जीवन व्यतीत करें . गुरु गोविंद सिंह जी , गुरु नानक देव जी , भगवान राम , स्वामी राम दास जी के जीवन के उदाहरण हमारे सामने हैं जिनका हमें अनुसरण करना चाहिये .

आप सब से अनुरोध है कि महापुरुषों के जीवन का अध्ययन करें . उनका जीवन हमारे लिए शास्त्र हैं , उपदेश हैं . उनके जीवन का अनुसरण करें . गीता के उपदेश को , भगवान राम की मर्यादा को , सन्तों के जीवन को अपनायें . उनके जीवन का अनुसरण करने से हमारा जीवन भी दुःख रहित हो जायेगा . चाहें कितने भी कष्ट हमारे जीवन में आ जायें , हमारे भीतर की शान्ति विचलित नहीं होगी , हमारा मन विक्षिप्त नहीं होगा . हमारा मन विक्षिप्त तभी होता है , तभी दुःखी होता है जब हम अज्ञान में होते हैं . हमारे में अज्ञान तब तक है जब तक हमारे में आसक्ति है , सच्चा प्रेम नहीं है, सच्चा ज्ञान नहीं है . इसलिए आप सबसे अनुरोध है , करबद्ध प्रार्थना है , केवल बातों को सुना ही नहीं जाय , किताबों की पूजा ही न की जाय , किताबों में जो कुछ ज्ञान है , उस ज्ञान की गंगा में स्नान किया जाय . अपने भीतर में शान्ति रखें . कितनी भी दुःखद घटना आ जाय , कितना भी सुःख आ जाय , हमारी समता भंग न हो . जब तक समता नहीं बनेगी , मानसिक सन्तुलन नहीं बनेगा , तब तक सच्ची शान्ति नहीं मिलेगी .

भगवान ने अर्जुन को यहीं समझाया है . मोह को छोड़ें , आसक्ति का त्याग करें . " मेरा मुझ में कुछ नहीं , जो कुछ है सो तोर तेरा तुझको सोंपते क्या लागे है मोर " मेरा कहने योग्य मेरे पास कुछ नहीं है .यह शरीर नष्ट हो जाता है . मुझे क्या दुःख ? तेरी चीज़ तुझे सौंप दीं है . मुझसे क्या मतलब ? कोई मोह नहीं . इस शरीर के साथ जो सम्बन्ध है वो मेरे थोड़े ही हैं , सभी आपके हैं . तेरे चरणों में समर्पित है . मुझे दुःख काहे का . यदि मेरा होता तो मेरे साथ जाता . वह तो मरने पर साथ नहीं जाता . तो अज्ञान छोड़कर मोह का त्याग करें . मोह का त्याग करने से समता आ जायेगी . मानसिक सन्तुलन आ जायेगा . अनुकूल अथवा प्रतिकूल सभी परिस्थितिओं में हमारा चित्त आनन्दमय रहेगा . जब तक चित्त आनन्दमय नहीं रहता तब तक आत्मा की अनुभूति नहीं हो सकती .

यह सत्यता है कि जब तक भीतर में प्रसन्नता नहीँ आती , आनन्द नहीं आयेगा , तब तक आत्मा की समीपता नहीं होगी . आनन्द , सुःख और सच्ची प्रसन्नता कब मिलेगी ? जब हम सन्तोष को अपनाएँगे . भगवान कृष्ण ने गीता में तीन प्रकार के तप कहे हैं . शरीर का तप , मन का तप , बुद्धि का तप .

स्वामी रामदास जी ने मन के तप के लिए तीन बातें अपनाना बताई हैं :

(१) तितिक्षा -- हम सुःख को भी हज़्म करें , दुःख को भी हज़्म करें . तितिक्षा के दो अर्थ होते हैं . एक तो गर्मी सर्दी को सहन करें . दुःख - सुःख आ जाय तो हमारा शरीर सहन कर ले . किन्तु वास्तविक तितिक्षा तो वह है "मस्ती " . यदि कोई हमें गाली दे तो हमें दुःख न हो और यदि कोई हमारी स्तुति करे तो हमें अहंकार न हो . महात्मा बुद्ध का जीवन इसका उदाहरण है . भगवान बुद्ध समता के स्वरूप थे . केवल उनकी तस्वीर देखने से ही शान्ति मिलतीं है तो उनके भीतर में कितनी शान्ति होगी . यह तो संसार है , इसमें हमें सब ओर से उत्तेजना मिलेगी ही . बाहर के लोग कम ,परिवार के लोग अधिक उत्तेजना देते हैं . तो तितिक्षा को ,सहनशीलता को अपनाना चाहिये .

(२) उदासीनता -- कोई आशा मत रखिए , कोई इच्छा मत रखिए . इच्छा रखेंगे और यदि उस इच्छा की पूर्ति नहीं हुई या आशा के अनुकूल कोई बात नहीं हुई , तो मन को दुःख होगा . प्रत्येक व्यक्ति यहीं चाहता है कि संसार में जितने सुःख हैं सब मेरे पास आ जायें और जो मैं सोचता हूँ , सारा संसार उसके अनुकूल चले . यह सोचना मूर्खता है . उदासीनता अपनानी चाहिये . शास्त्र के अनुकूल , गुरु के उपदेश के अनुकूल तथा अपने भीतर की चेतना के अनुकूल , अपना कर्तव्य करना चाहिये . क्या परिणाम होगा , इसकी चिन्ता मत कीजिये .

आप अपने व्यवहार से , मधुर वाणी से संसार की सेवा करें . यह संसार स्थायी नहीं है . महात्मा बुद्ध ने इसे अनित्यता का बोध कहा है . परमात्मा के सिवाय कोई वस्तु नित्य नहीं है . यह शरीर , सम्बन्धी , धन , मकान , दुःख - सुःख कोई सदैव रहने वाले नहीं हैं . सब अनित्य हैं . जिसको इस अनित्यता का बोध हो जाता हैं, वह उदासीन हो जाता हैं. उदासीनता का मतलब है कि भीतर में यह समझ , ज्ञान आ जाना चाहिये कि यह संसार तो नित्य रहने वाला , स्थायी नहीं हैं तो इसके प्रति मोहग्रस्त क्यों होना चाहिये आसक्ति क्यों रखें ? संसार से मन हटाकर ईश्वर से अनुराग किया जाय . यदि संसार से उदासीनता की जायेगी और ईश्वर के साथ प्रेम नहीं किया जायेगा, तो मन में निराशा -दुःख उत्पन्न हो जायेगी , जिसे हर आदमी बर्दाश्त नहीं कर सकेगा . इसलिए उदासीनता के साथ ईश्वर अनुराग होना चाहिये .

(३) नमस्कार -- किसको ? सारे जग को , सारे विश्व को . क्यों ? प्रत्येक रूप में ईश्वर व्यापक है . हम इन रुपों को नमस्कार नहीं करते वरन इन रूपों में जो आत्मा और परमात्मा व्यापक है , विद्यमान है , उसको नमस्कार करते हैं . जब आप श्रद्धा और विश्वास के साथ सब ही को नमस्कार करेंगे तो आपके हृदय में किसी के प्रति ग्लानि नहीं होगी चाहे कोई आपके प्रति कितनी ही बुराई क्यों न करे . भगवान राम के हृदय में रावण के प्रति द्वेष भावना नहीं है . उसके हृदय में वही आत्मा और परमात्मा है . जब आपका सबके साथ प्रेम होगा , आप सब में ईश्वर का रूप देखेंगे , सब कार्य ईश्वर के लिए ही करेंगे . सबको सुःख और आनन्द पहुँचाने के लिए कर्म करेंगे तो आपके चित्त में कितनी प्रसन्नता उत्पन्न होगी . यह मन का तप है जो गीता में भगवान कृष्ण ने समझाने की कोशिश की है . उसको तीन सरल शब्दों में स्वामी राम दास जी ने ऊपर समझाया है .

हमें भी अपनी इस जीवन यात्रा में कुछ तप करना पड़ेगा . भगवान ने जो तप बताया है -- तितिक्षा , उदासीनता , नमस्कार , ईश्वर प्रेम , सबका सम्मान करना , सबकी इज़्ज़त करना . ऐसा करने से प्रत्येक व्यक्ति को वास्तविक सुःख ,आत्मिक सुःख ,आनन्द की अनुभूति हो सकती है . ईश्वर के साथ प्रेम करिए या ईश्वर के जो प्रेमी हैं उनकी सेवा करिए , एक ही बात है . जिस व्यक्ति के भीतर में ईश्वर के गुण व्यक्त हैं , उस व्यक्ति की सेवा करिए . केवल सेवा करने से ही हमारा उद्धार हो जायेगा . उस व्यक्ति के जीवन का अनुसरण कीजिये तथा वैसे ही बन जाइए . बड़ा सरल साधन है . ईश्वर कृपा से यदि कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाय जिसका रोम -रोम ईश्वर प्रेम से रंगा हुआ है , ऐसे व्यक्ति की सेवा करें . इससे हमारे जीवन का उद्धार हो जायेगा .

ईश्वर आप सबका कल्याण करें .

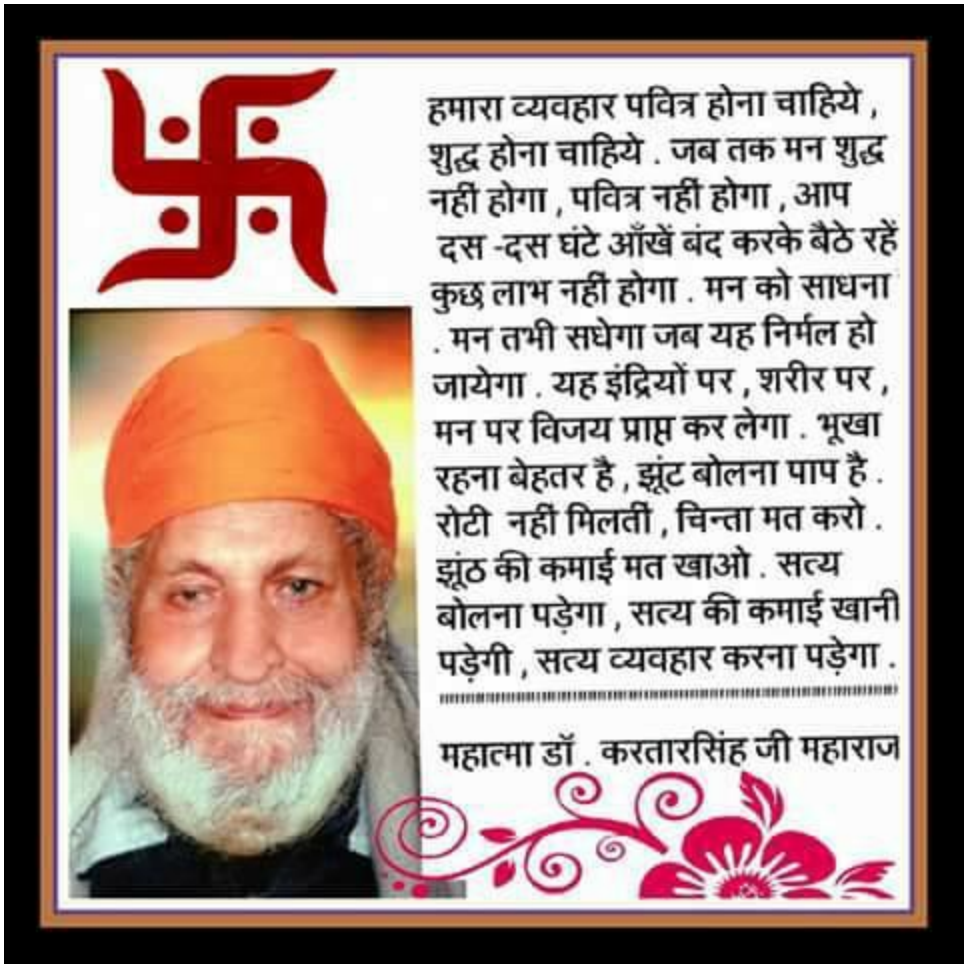

आचरण की नींव पर परमार्थ का मंदिर बनाओ

एक प्रचलित पौराणिक दृष्टांत बहुत शिक्षाप्रद है. एक बार भगवान विष्णु ने नारद जी से कहा कि मेरे अमुक भक्त के पास जाइये और उसकी कुशलता का समाचार ले आइये. नारद जी गए, वहां देखते हैं जब वह व्यक्ति उठता है, एक बार 'नारायण' कहता है और जब सोता है तब 'नारायण' कहता है. पूरे दिन अपने कार्य में व्यस्त रहता है. एक दूसरा व्यक्ति प्रतिक्षण 'नारायण-नारायण' रटता रहता है , काम कुछ भी नहीं करता . उन्होंने पहले वाले व्यक्ति से कहा तुम भगवान् के कैसे भक्त हो जो भगवान् का ठीक से भजन भी नहीं करते, कभी पूजा नहीं करते. वह व्यक्ति चुप रहा.

नारदजी क्रोध में भगवान के पास गए और लड़ने लगे . भगवान ने कहा ' ठीक है थोड़ी देर में बताऊंगा. यह एक कटोरा है, इसमें दूध है, उसमें पुष्प रखा ह . आप परिक्रमा करके आइये पर दूध गिरने न पाए. तब मैं आपसे बात करूंगा'. नारद जी को आज्ञा का पालन तो करना ही था. दस-बीस क़दम चले, ख्याल दूध की तरफ था. इधर-उधर नहीं देखा कि भगवान नाराज़ न हो जाएँ. दूध के उस ध्यान से ईश्वर का ध्यान तो चला गया, नारायण-नारायण जो कहते थे, वहां से ध्यान तो चला गया, केवल दूध में ही ध्यान लगा रहा. इससे एकाग्रता आ गई. दस क़दम से ज़्यादा नहीं चल पाए, डरते जाते थे कि यदि दूध गिर गया तो भगवान नाराज़ हो जायेंगे. वापिस लौट आये. बोले कि ' यह काम मुझसे नहीं हो सकता, कोई और काम बताइये '. भगवान बोले - ' वह (पहला) व्यक्ति सारे ही दिन ऐसे ही काम करता है. उसे कुछ भी होश नहीं रहता, भीतर में मेरी याद में है और अपना काम भी करता रहता है. उसका मन दायें -बायें नहीं जाता .'

जिन व्यक्तियों का मन ' दायें -बायें' जाता है उनको कहीं भी शांति नहीं मिल सकती. हमें प्रत्येक क्षण अपने मन पर निगाह रखनी चाहिए. हमारा मन ऐसी- वैसी निर्थक बातें करता रहता है. इससे आपको ही नुक्सान होता है. यदि आपके भीतर में बुरे विचार हैं तो आपके बुरे विचारों से वायुमण्डल भी दूषित होता है. कारखानों से वायुमण्डल इतना दूषित नहीं होता जितना आपके बुरे विचारों से दूषित होता है. आप कहते हैं कि ऐसा कैसे हो सकता है ? आप रेडियो सुनते हैं. रेडियो स्टेशन से जो तरंगें आती हैं वह आपका रेडियो पकड़ता है और आप सुन लेते हैं.

इसी प्रकार आपके शरीर से प्रतिक्षण तरंगें निकलती रहती हैं और वे तरंगें सारे वायुमण्डल को शुद्ध अथवा अशुद्ध करती रहती हैं. इसीलिए कहते हैं कि संत जहाँ जाते है, वह स्थान तीर्थ बन जाता है. संत के शरीर की तरंगों से ऐसा होता है . उसके अच्छे-अच्छे विचारों की, आत्मा की, तरेंगे वहां फैल जाती हैं और वह स्थान शुद्ध हो जाता है, तीर्थ बन जाता है. जहाँ गंदे आदमी बैठते हैं आप अगर वहां जाएँ तो आपको अनुभव होगा कि आपका मन वहां नहीं लगेगा. जहाँ आपका मन लगे आप समझ लीजिये कि या तो आपका वहां रोज़ाना पूजा करने का असर है या कोई संत-महापुरुष वहां आया है और अपनी उपस्थिति का चिन्ह वहां छोड़ गया है.

अब आप भी देख सकते हैं कि मंदिर में जाइये , गिरजाघर, गुरुद्धारे जाइये, आपका मन वहां लगेगा. हज़ार-हज़ार साल के मज़ार हैं, समाधियां हैं और तपोभूमियाँ हैं. उनके दर्शनों के लिए जाइये. अब भी वहां बैठते है तो ऐसा मालूम देता है कि किसी ने हमें नशा पिला दिया है. वह संत तो शरीर रूप से वहाँ नहीं है परन्तु उस स्थान को उसने अपनी तरंगों से इतना रंग दिया है कि जो भी श्रद्धा से वहाँ जाता है उसको प्रसादी मिलती है.

कई स्थानों पर हम गए हैं. गुरु महाराज के साथ गए. हम पर विशेष कृपा या विशेष आकर्षण मिला. आगरा में एक संत की मसजिद है, वहाँ बैठकर भीतर में ऐसा लगा कि किसी ने हमें इतना पिला दी है कि हमारी आँखें नहीं खुली. इसीलिए लोग तीर्थों पर जाते हैं. परन्तु लोग इनका महत्व समझते नहीं हैं. यही देखते हैं कि बड़ा पवित्र स्थान है, वहाँ खूब दुकानें लग रही हैं, चाट-पकोड़ियां खाई जा रहीं हैं, कोई चाय पीने में मस्त है, कोई कुछ और सैर-सपाटा कर रहा है. तीर्थों पर जाने वाले अधिकांश तीर्थ यात्रिओं के ऐसे व्यवहार से उस स्थान की सारी महत्ता कम हो जाती है.

एक भाई बड़े अच्छे अभ्यासी थे. उनके गुरु महाराज (पूज्य महात्मा रामचंद्र जी महाराज) की विशेष कृपा उन पर थी. उन्होंने अपने गुरुदेव को पत्र लिखा कि अभ्यास करते- करते इतना समय हो गया परन्तु मन अभी तक स्थिर नहीं होता, शांति नहीं मिलती. हम सबके भीतर में यही अभाव रहता है. बड़ी अच्छी-अच्छी स्थिति के भाई भी यही कहते हैं. उनको हमारे दादा गुरु ,पूज्य लाला जी महाराज, ने लिखा - " आप जो साधन करते हैं वह आपके लिए काफी हो गया, यानी आप जो सुरत का अभ्यास करते हैं वह तो काफ़ी हो गया. आपकी सुरत की चढ़ाई तो सहस दल कँवल तक पहुँच गयी . काफ़ी साधना व अभ्यास हो गया . अब समय आ गया है कि इस अभ्यास को आनन्दमय बनाने के लिए कुछ और बातों की ज़रुरत है, उनकी तरफ आप ध्यान दें ."

वास्तविक स्थिति यह है कि न तो हम मनन करते हैं, और न किसी बात का ध्यान रखते हैं. न ईश्वर और गुरु के गुणों को सराहते हैं. न यह प्रयास करते हैं कि गुरु की सुंदरता को ,उसके गुणों को अपनाए . हम तो अपने ही अवगुणों से घिरे रहते हैं.-- जैसे कि हम झूंठ बोलते हैं और सालों से बोल रहे हैं. सत्संग में इतने दीर्घ काल से आने पर भी हमारी यह आदत नहीं जाती. तो वह क्यों नहीं गई ? घृणा की आदत नहीं जाती, लड़ने की आदत नहीं जाती , खाने-पीने की आदत नहीं जाती . रसना का रस, आँखों के देखने का रस, वहीँ चल रहा है. बातें करने में वही रस आ रहा है, जाता क्यों नहीं ? न तो हमने कभी यह सोचा या मनन किया. न ईश्वर के गुणों की पूजा ही की - दर्शन तो दूर की बात है.

मनुष्य की इन्द्रियां और मन अपना ही खेल खेल रहे हैं. मन संकल्प विकल्पों में फंसा हुआ है. वह शरीर और इन्द्रियों को अपने वश में किये हुए है. वह बुद्धि के और विवेक, वैराग्य के गुणों को अपनाता ही नहीं. इसलिए मन अपनी शक्ति खो चुका है. चंचलता में फंस गया है. वह आत्मा से, परमात्मा से , गुरु से, प्रकाश नहीं लेता. अर्जुन को भगवान् कृष्ण से इतने प्रश्न क्यों करने पड़े ? प्रभु उसके ऊपर दयालु थे. इसी प्रकार हमारा मन प्रश्न और शंका उठाता रहता है. गुरु

और परमात्मा की ओर उन्मुख ही नहीं होता. अपने को प्रकाशित नहीं करता. मनमानी करता है, दिखावा करता है कि मैं पूजा करता हूँ.

साधक को गंभीरता से प्रेम की तरफ उन्मुख होना पड़ेगा . परमात्मा के, गुरु के गुणों को अपनाना पड़ेगा ओर अपने मन पर उनका प्रकाश डालना पड़ेगा, मन को अपने आधीन करना पड़ेगा. तब ईश्वर प्रेम का संगीत बजेगा. पूज्य लाला जी महाराज इसी संगीत के लिए कह रहे हैं. तभी हम शांति और आनंद को प्राप्त कर सकेंगे और आगे बढ़ने के अधिकारी होंगे. इससे पहले तो ऐसा है जैसे हम किसी बच्चे के खिलोने के साथ खेल रहे हों. हमारे जीवन में अभी जाग्रति ही पैदा नहीं हुई है कि हमारे जीवन का लक्ष्य क्या है ? योग क्या है, परमात्मा क्या है, आनंद क्या है?

पूज्य लाला जी महाराज इसी संगीत के लिए फरमाते रहे. यदि हारमोनियम को ठीक तरह से बजाय जाय तो संगीत निकलता है, सरस्वती जी की सुरधारा निकलती है. यदि बच्चों की तरह हाथ -पैर मारें तो बड़े लोग कहते हैं, बंद करो. तो भीतर में एक शांति और आनंद का संगीत होना चाहिए. खाना खाया, स्वाद आया . हम इसे ही शांति मान लेते हैं. यह शान्ति नहीं है. हमारी कोई आशा बच्चों ने, मित्रों ने पूरी कर दी, इसे ही हम शांति मान लेते हैं. यह अस्थाई सुख है जो थोड़े समय बाद दुख में परिवर्तित हो जाता है. असली शांति तो आत्मा में है. इसके लिए हमें सर्वप्रथम अपने आचरण की नीव को मज़बूत करना होगा.

हमें अखबार पढ़ने से फुरसत नहीं मिलती, स्वभाव बन गया है. अखबार में इतने मस्त हो जाते हैं कि हमें अपना कोई ध्यान ही नहीं रहता. न पूजा का और न कोई अन्य आवश्यक बातों का. इसलिए पूजा में बैठने से पहले अपनी इच्छा शक्ति को अपने नियंत्रण में करना चाहिए . साधना के उपाय भी करने चाहिए. अखबार वाले से कह दीजिये कि एक घंटे बाद दे जाए. दोनों ही लाभ प्राप्त करने हैं . ईश्वर से अधिकाधिक प्रार्थना करनी चाहिए. जितनी आपकी अपनी शक्ति लग सकती है उतनी तो उसका उपयोग करना चाहिए.

पूज्य लाला जी महाराज ने कहा है तथा पूज्य गुरु महाराज ने भी लिखा है कि " जो कमज़ोरी हमने अपने गुरुदेव से कह दी, वो तो दूर हो गयी. जिनको कुछ संकोच के कारण हमने छिपाकर रखा, वे कमज़ोरियाँ अब तक नहीं छूटी. " यदि कोई कमज़ोरी आपसे नहीं छूटती है तो गुरु से अवश्य कह दीजिये. गुरु आपकी सेवा करेंगे, आपके लिए दुआ करेंगे , साधन करेंगे. उससे आपको बल मिलेगा. हमें गुरुजनों से अपनी कमज़ोरी अवश्य कहना चाहिए .

प्रार्थना करने, मनन करने, आचार व्यवहार शुद्ध करने और सद्गुणों को अपनाने तथा सदव्यवहार करने के बिना रास्ता नहीं मिलेगा, साधना नहीं हो सकती. अपने मन पर अंकुश लगाना चाहिए. मन, शरीर और इन्द्रियों पर अंकुश रखें. बुद्धि मन को वश में रखे, बुद्धि आत्मा और गुरु से प्रकाशित होवे. यदि इन बातों को याद रखेंगे तो हमारी प्रगति थोड़े ही दिनों में होने लगेगी. आप स्वयं अनुभव करेंगे और आपके मित्र और परिवारी- जन अनुभव करेंगे कि आपमें कोई विशेष

परिवर्तन आ गया है. आपके स्वभाव में शांति होगी , प्रेम होगा, करुणा होगी. यहाँ तक कि आप जहाँ भी बैठेंगे, आपके पास जो भी बैठेगा उसे भी शांति का अनुभव होगा.

आप एक सगंधित पुष्प की तरह बन जाएंगे. आपसे सुगंध का प्रवाह होने लगेगा. आप इसी सुगंध का प्रभाव औरों पर डालकर उन्हें प्रेरणा दे सकेंगे जिससे वे भी अच्छे रास्ते पर चलेंगे. यह प्रत्येक व्यक्ति का काम है. एक ही व्यक्ति को सेवा नहीं करनी है. आप सबको मिलकर एक सुगन्धित पुष्प की तरह बनना है और अपनी सुगंध से चारों ओर परमात्मा के नाम को फैलाना है. अपने गुरु के नाम को प्रसारित करना है.

प्रत्येक सत्संगी का व्यवहार सामान्य व्यक्ति से ऊंचा होना चाहिए. आचरण की इसी मज़बूत नीव पर हमारा आध्यात्म का, परमार्थ का मंदिर बन पायेगा.

गुरुदेव आपका कल्याण करें.

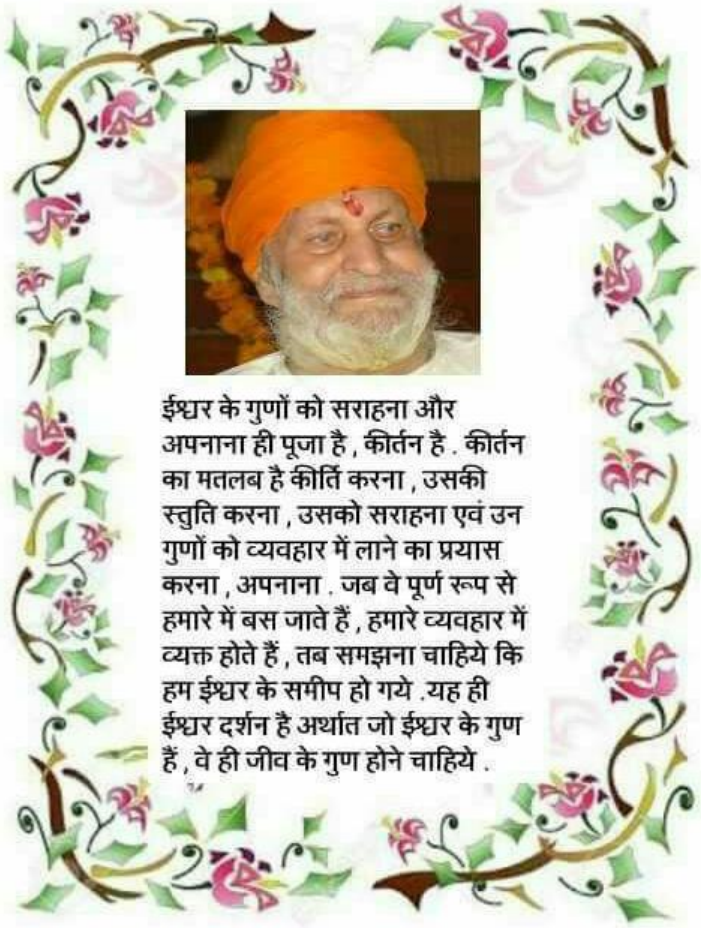

ईश्वर कृपा का आभास (फैज़ का एहसास) साधक के तनिक से अभ्यास से संभव है

प्रत्येक व्यक्ति पर ईश्वर कृपा (फ़ैज़याबी) एक जैसी होती है, यह बात कोई अंध विश्वास नहीं है. प्रत्येक व्यक्ति इसकी अनुभूति स्वयं कर सकता है. इसके लिए उसे इतना ही करना है कि वह सिद्ध आसन में या किसी भी उस आसन में जिसमें उसे सुख मिले, झोली फैला कर बैठें. प्रभु का जो भी रूप इष्ट हो उसी रूप का नाम भीतर में लेते रहें. केवल इतनी ही करना है. इसी कृपा वृष्टि के नीचे बैठना है. आप देखेंगे कि दो-तीन मिनट के बाद आपको ऐसा मालूम होगा कि आपके शरीर को कुछ सूक्ष्म सी शक्ति मिलती जा रही है. आप इस अभ्यास को यदि बढ़ाते जाएँ तो आपका शरीर इतना सूक्ष्म होता जायेगा कि जैसे कपास होती है . आप यदि भीतर में भी निर्मल हैं तो समय पाकर आप देखेंगे कि आपके व्यक्तित्व में भी केवल आनंद का ही प्रभाव होगा.

यह इतना सहज साधन है कि प्रत्येक व्यक्ति, चाहे वह बच्चा हो, स्त्री हो, बूढ़े पुरुष हों , सब इसे कर सकते हैं. ईश्वर को आप चाहे किसी भी रूप में मानते हों, निराकार स्वरुप को मानते हों, प्रभु के साकार स्वरुप को देवी-देवता के रूप में मानते हों, या चाहे गुरु को मानते हों, यही ख्याल करके बैठ जाइये कि आप प्रभु के चरणों में बैठे हैं और उनकी कृपा आप पर बरस रही है. प्रभु की कृपा आपको अवश्य मिलेगी. ईश्वर की कृपा बरसती रहती है. यह इतना सरल साधन है और इसका करना इतना आसान है कि यदि कोई भी व्यक्ति इस साधन को मन लगाकर कुछ महीने करे तो उसके भीतर में क्रांति आ सकती है. कहते हैं कि उसको ईश्वर के दर्शन हो जायेंगे - यह सत्य है.

ईश्वर के दर्शन करने का मतलब यह है कि आपके भीतर में भी वे ही गुण आ जायेंगे जो गुण ईश्वर के हैं. यदि किसी साधना करने के पश्चात आपके भीतर में कोई गुण उत्पन्न नहीं होते तो आपकी साधना में कहीं कमज़ोरी है. इस कमज़ोरी के विषय में आप अपने गुरु से भी पूछ सकते हैं.

इस अभ्यास को बढ़ाने से आप भीतर में बढ़ेंगे. आप अपने असल स्वरुप के दर्शन कर पाएंगे. आपकी दृष्टि ईश्वरमयी हो जाएगी. आपको ईश्वर की उपस्थिति का भान प्रति क्षण होने लगेगा. भीतर में एक प्रकार की अनुभूति होने लगेगी. पहले यह अनुभूति शरीर से होगी. जब धीरे-धीरे शरीर सूक्ष्म होता चला जायेगा तब इसकी अनुभूति भीतर में भी होने लगेगी. जितना आपका मन स्थिर होने लगेगा, उतना ही साधुता एवं सत्यता का भान होने लगेगा. भीतर और बाहर की अनुभूति मिल जाने को आत्मा-परमात्मा का मिलन कहते हैं. हमारी आत्मा जो ईश्वर से बिछुड़ी हुई थी, बीच में एक दीवार सी खड़ी थी, वह दीवार टूट जाएगी. आत्मा-परमात्मा एक हो जायेंगे. हमें ईश्वर की अनुभूति होगी.

परन्तु यह होना चाहिए चरित्र-निर्माण के साथ-साथ. गुरु बतलाता है कि हमारे भीतर में परिवर्तन कैसे होना चाहिए ? यदि नहीं होता तो हमारे भीतर में क्या कमज़ोरी है ? जो व्यक्ति जागरूक और पढ़े-लिखे हैं उनको विचार

करना चाहिए कि परिवर्तन क्यों नहीं हो रहा है ? आप देखेंगे कि ईश्वर की मौजूदगी और उसकी स्मृति को ही हम सांस्कारिक कार्यों में फंस कर भूल जाते हैं. हम तो ईश्वर को एक मित्र की तरह भी स्मरण नहीं करते. इसलिए महापुरुषों ने कहा है - स्मृति ही जीवन है, विस्मृति मृत्यु है. जब हम सुमिरन करते हैं तो स्मरण करने पर वो मन की दीवार टूट जाती है और आत्मा-परमात्मा एक हो जाते हैं. यहां अपने इष्ट का रूप, उसके गुण, उसकी जीवन-लीला और व्यवहार आपकी आँखों के सामने,आपके हृदय में समा जाते हैं. प्रकट हो जाते हैं. स्मृति और सुमिरन का असली परिणाम यही है कि जिसका स्वरुप और गुण हम स्मरण करें, वह हमारे भीतर में प्रकट होकर हमारे रोम-रोम को रोमांचित कर दे. हमारा सारा शरीर ही ईश्वरमय हो जाये.

' तन में राम, मन में राम, रोम-रोम में राम ही राम '

सीधा-साधा व्यक्ति इन बातों को बड़ी जल्दी पकड़ लेता है और उसको अनुभूति भी शीघ्र होती है. परन्तु जो व्यक्ति बुद्धिजीवी होते हैं उनके भीतर में तर्क अधिक होता है, संकल्प-विकल्प अधिक होते हैं. हर बात को वैज्ञानिक स्तर पर सोच कर फिर मानते हैं. लेकिन जब उनको जांच परख करने पर कुछ मिल जाता है और वह उसको एक बार पकड़ लेते हैं तो वह उसको फिर कभी नहीं छोड़ते. आप भी किसी बात को तभी मानिये जब आपको उसकी अनुभूति हो जाये. आपको केवल इतनी ही करना है कि ऊपर जो कहा गया है कि उस पर थोड़ा सा विचार करके, अभ्यास करके देखें .

ईश्वर की कृपा इतनी अधिक मात्रा में है कि हम लोग इसकी और ध्यान ही नहीं करते. जो चीज़ कम होती है,उसकी क़ीमत ज्यादा होती है जैसे - हीरा, सोना, आदि. उससे कम चांदी आदि दूसरी धातु हैं, उनकी कीमत कम होती चली जाती है क्योकि वे कुछ अधिक मात्रा में होती हैं. इसी प्रकार जल, वायु , तो कितनी अधिक मात्रा में हैं, जरा सोचिये, इनकी कोई परवाह ही नहीं करता. परन्तु इन सबसे अधिक मात्रा में है - ईश्वर की कृपा. इस महान कृपा को प्राप्त करने का भाव लेकर बैठें कि - " हे प्रभु ! हमें शक्ति दीजिये ताकि हमआपकी कृपा से ही इस फ़ैज़ को ग्रहण कर सकें. "

वैसे तो लाभ सभी को होगा , पर उसका पूरा लाभ लेने के लिए दो-तीन बातें करनी होंगी. यदि पूरा लाभ लेना चाहते हैं तो सबसे पहले अपने शरीर को स्वस्थ और चुस्त बनाना आवश्यक है. प्रत्येक व्यक्ति को चाहे वह स्त्री हो, बच्चा हो या बूढा हो, उसे कोशिश करनी चाहिए कि उसका शरीर स्वस्थ रहे. स्वस्थ शरीर ही साधना कर सकता है. इसके लिए भगवान कृष्ण ने गीता में समझाया है, अन्य विद्वतजनों ने, संत-साधुओं ने भी समझाया है और उनके कुछ सुझाव भी हैं. ये सुझाव हैं - कम खाना चाहिए, कम सोना चाहिए, कम बोलना चाहिए. कम का मतलब है - बीच का रास्ता. जैसा आपका व्यवसाय है उसके अनुसार आपका हर काम और आपका भोजन भी होना चाहिए. युवकों और मेहनत करने वालों को कुछ अधिक खाना चाहिए, बाबुओं को जो कुर्सी- मेज़ पर बैठे रहते हैं ,उनको कुछ कम खाना चाहिए. ये बातें प्रत्येक व्यक्ति के लिए भिन्न हैं. एक ही बात प्रत्येक व्यक्ति के लिए नहीं है. फिर भी प्रत्येक व्यक्ति इस प्रकार भोजन खाये कि जितना उसका भीतर से मन हो उससे १० -१५ प्रतिशत कम खाये. भोजन सात्विक, पौष्टिक एवं तुरंत हज़म होने वाला

हो, जैसे - साग-सब्ज़ी, मौसम के फल, दूध-दही ,दाल-चावल, अनाज, आदि का सेवन करना चाहिए . मीट, मछली, अण्डे का परहेज़ करना चाहिए. तमाखू , सिगरेट आदि से यथाशक्ति एकदम ही बचना चाहिए.

इसी के साथ अपने व्यवसाय के अनुसार यथायोग्य व्यायाम या सैर करनी चाहिए. मेहनती लोगों को व्यायाम या सैर करने की आवश्यकता नहीं है. परन्तु सुबह से लेकर शाम तक जो लोग कुर्सी-मेज़ पर बैठे रहते हैं, उनके लिए तो ज़रूरी है कि वे कुछ व्यायाम भी करें , नहीं तो वे जल्दी बूढ़े हो जायेंगे, उनकी पेशाव में शुगर जाने लगेगी, और भी कई तरह की बीमारियां उत्पन्न हो सकती हैं. शक्ति तो कम होती ही है परन्तु उन्हें किसी न किसी काम को करके अपने अंगो को, विशेषतः हाथ-पैरों को, चलाते रहना चाहिए.

चित्त, बुद्धि एवं विचार निर्मल होने चाहिए. मन में बुरी भावना न हो, चित्त में नए संस्कार न बनें, बुद्धि तर्कशील न रहे. जब हम इन तीनों से मुक्त हो जाते हैं तब जाकर पवित्रता पाते हैं. विनोबा जी ने लिखा है कि " प्रसन्नता के अभ्यास से भी ईश्वर के दर्शन हो जाते हैं ". पहले यह बात समझ नहीं आती थी, परन्तु अब मैं मानता हूँ कि उनकी यह बात सत्य है. परन्तु, प्रसन्नता केवल सांसारिक बस्तुओं से ही न हो. सिकंदर बादशाह के पास क्या कुछ नहीं था पर क्या वह प्रसन्न था ? प्रसन्नता किसको आएगी ? जिसके भीतर में निर्मलता और तृप्ति होगी. जिसके भीतर में संतोष होगा वही प्रसन्न होगा. इसका यह मतलब नहीं कि आप काम न करें. खूब काम करें. अपनी अवस्था -अनुसार अपनी आर्थिक और सामाजिक स्थिति को बढ़ाने के लिए अधिक से अधिक प्रयास करें. खूब कमाएं, परन्तु ईमानदारी और मेहनत से.

अब विवेक पूर्वक विचार करें कि उससे क्या प्राप्त होता है ? धन-राशि आदि से बैंक लॉकर भर लें, दो-चार मकान खड़े कर लें, ज़मीन खरीद लें, पर क्या इन सब में प्रसन्नता है ? बड़े आदमियों (धनवानों) को रात को सोने के लिए नींद की गोलियां खा कर सोते सुना है. प्रयास और परिश्रम करने के बाद यदि कुछ प्राप्त नहीं होता तो ईश्वर की इच्छा है - ऐसा सोचें. ईश्वर की इच्छा में, उसकी गति में अपनी गति को मिला देना चाहिए . जो व्यक्ति ऐसा नहीं करता वह कभी भी प्रसन्नचित्त नहीं रह सकता. ' प्रभु जो करते हैं वह हमारे हित में करते हैं ' - इसका अभ्यास करना चाहिए. जब शरीर स्वस्थ है, मन निर्मल है, भीतर में प्रसन्नता है तब ईश्वरीय कृपा की अनुभूति होती है. प्रसन्नता आती है तब निर्मल मन स्थिर और एकाग्र हो जाता है, संकल्प-विकल्प नहीं रहते तो ऐसी स्थिति में प्राप्त प्रसन्नता की, ईश्वरीय कृपा की अनुभूति होती है.

यह जो बातें मैं आपकी सेवा में कह रहा हूँ , कोई कठिन नहीं हैं. थोड़ा सा, तनिक सा, प्रयास करने की आवश्यकता है. विशेषकर माताओं को अपने प्रति भी सतर्क रहना चाहिए. उनको अपने बच्चों को स्वस्थ रखने के लिए , उनकी प्रसन्नता के लिए, उनमें अच्छे गुण हों, इसके लिए अपने घर-परिवार में ऐसा अनुकूल वातावरण बनाना चाहिए. वे माता तो हैं ही पर दाता भी हैं क्योकि बच्चों को प्रथम शिक्षा वही देती हैं. परन्तु बड़े दुःख की, बड़े खेद,की बात है कि माताएं इस तरफ अधिक ध्यान नहीं देती. वे लकीर की फ़क़ीर हैं. हमारी बहिने बहुधा यह नहीं जानती कि क्या खाना चाहिए, क्या पकाना

चाहिए. सबके घर में दवाइयों के ढेर और उनके बिल मिलेंगे, कोई अस्पतालों में घूम रहे हैं. ये सब परेशानी भोजन-विषयक अज्ञान के कारण है. माताओं के साथ -साथ, आप सब लोग भी कुछ कोशिश करें कि जहां तक हो सके आपके परिवार में भोजन लाभप्रद हो, आप साफ़ रहें, शरीर रोगी न हो, मन रोगी न हो, प्रसन्नता का बोध करने के लिए संतोषवृत्ति हो. ईश्वर ने हमें जिस परिस्थिति में रखा है, उस परिस्थिति में ही संतुष्ट रहें.

मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आप तीन-चार महीने साधना का और इन तीन बातों का जो मैंने आपको बतलाई हैं - यानी यथोचित खाना, यथा-आवश्यकता बोलना और सोना - इनका अभ्यास करिये. आप स्वयं देखेंगे कि आपको ईश्वर की अनुभूति, आत्मा का साक्षात्कार हो सकता है. एक व्यक्ति विलायत गए तो उनसे पूछा गया कि एक आध्यात्मिक महापुरुष में और आपमें क्या अन्तर है. उन्होंने उत्तर दिया कि वे तो संत बनाते हैं और मैं सेवक बनाता हूँ और वह व्यक्ति यही ' अकिंचन ' था क्योकि मैं तो सेवक बनाता हूँ. मैं स्वयं भी एक सेवक हूँ.

गुरु तो केवल परमात्मा है. हमारे दादा गुरु (लाला जी महाराज) कहा करते थे कि जो व्यक्ति अपने आपको गुरु कहता है, वह गुरु नहीं है. ईश्वर की तुलना में हम क्या कर सकते हैं ? ईश्वर के मुक़ाबिले में हमारी हैसियत क्या है ? हमारे जैसे साधक तो केवल सेवक हैं. आप भी सेवक बनिए, गुरु बनने की चेष्टा छोड़िये. जो कुछ मैंने आपसे निवेदन क्या है, इन सावधानियों को और साधना को , पहले आप अपनाएं , फिर परिवार में , फिर समाज में सबको बताएं.

परमात्मा के सभी (अनेक) नाम हैं . कोई व्यक्ति शिव भगवान का नाम लेता है तो कोई राम, कृष्ण आदि का - सबको अपना प्रिय नाम लेने दीजिए . इसके झगडे में मत पड़िये. नाम तो वही है जिस नाम के लेने से ईश्वर की तस्बीर, ईश्वर का स्वरुप और उसके गुण हमारे सम्मुख आ जाते हैं और हमारे ह्रदय पर छा जाते हैं. वास्तव में उस नाम के साथ नाम लेने वाले की प्रेमगति है जिससे लाभ होता है. भाव से लाभ होता है. जिस भाव से आप प्रभु को याद करते हैं उसको हम प्रेम कहते हैं. उसको प्रेम से बुलाइए, प्रेम से उसके चरणों में बैठिए और संसार के साथ भी आप अपने व्यवहार में प्रेममय हो जाय. गुरु का यही ऋण है कि आप सुन्दर बनें, भगवान की तरह निर्मल बनें. भगवान शिव भी प्रेम गंगा और ज्ञान गंगा से सबको निर्मल करते हैं. आप भी वही रूप हैं . ईश्वरीय गुणों का ऋण आप तभी उतार सकेंगे जब आप पहले स्वयं निर्मल बनेंगे और फिर अपने व्यवहार को प्रेममय सुन्दर, सेवामय बना कर संसार को निर्मल बनाने का प्रयास करेंगे. गुरु मत बनिए, सेवक बनिए.

इस स्थिति के साथ-साथ भीतर का जो अभ्यास है, वो भी करना चाहिए. आपको जिसको जो पूछना है, मैं तैयार हूँ वो सब बताने को. इसके बारे में संकुचित होने की आवश्यकता नहीं है, मैं स्पष्ट बतला सकता हूँ. परन्तु वह भीतर का अभ्यास प्रत्येक व्यक्ति के लिए भिन्न - भिन्न प्रकार का होगा. किसी के भीतर में भक्ति की भावना होती है, उसको भक्ति का अभ्यास बता दिया जाता है. जिस साधक में ज्ञान वृत्ति होती है, उसको ज्ञान साधना बता दी जाती है. ये बातें पूछने-

बतलाने में कोई संकोच नहीं करना चाहिए. किसी तरह सबको आनन्द, सुख और शांति मिलनी चाहिए . पर यह काम मेरे अकेले का नहीं है. आप सबका काम है. इस प्रेम-यज्ञ में आप सबको आहुति डालनी है.

जय प्रकाश जी ने क्या माँगा था - ' समाज में सम्पूर्ण क्रांति ' . लोगों ने समझा नहीं था उसको कि वो बिहार का शेर क्या चाहता था. सम्पूर्ण क्रांति .... भीतर की ... प्रत्येक की व्यक्तिगत क्रांति .... क्योकि व्यक्ति ही समाज बना सकता है. हम इतने बड़े समाज बनाने की बातें करते हैं किन्तु व्यक्ति को बनाने की बात नहीं होती. हम आप सबको पहले स्वयं में क्रांति लानी होगी. हमारा व्यक्तित्व एक उदाहरण बनना चाहिए . यदि आप, हम, सब ही कोशिश करेंगे तो समाज खुदबखुद बनता चला जायेगा. समाज में अपने आप ही क्रांति आ जाएगी. आप स्वयं सुख, शांति और आनंद प्राप्त करेंगे एवं इस प्रसादी को समाज में, देश में बाँटने का प्रयास करेंगे. राजनीति में नहीं पड़ना है. आज की राजनीति में पड़ना तो दुर्भाग्य होगा क्योकि वहां अब एक मात्र ध्येय निजी स्वार्थ पूर्ती करना हो गया है जिसके लिए कैसी-कैसी और क्या-क्या बुराइयां होती हैं, सब ही जानते हैं .

हमारे सत्संग के सभी भाई-बहिनों, विशेषतः पुराने और वरिष्ठ साधकों, शिक्षकों, आचार्यों आदि से प्रार्थना है कि अपने व्यवहार से देश में क्रांति लाइये. सच्चाई की क्रांति लाइए , प्रेम और सेवा की क्रांति लाइए. पहले अपने आप में परिवर्तन करिये, अहिंसा और सत्य धारण करिये, अपने आपको पवित्र बनाइये, फिर अपने परिवार में परिवर्तन लाइए . घर में एक आनंद का साम्राज्य होना चाहिए . इसी प्रयास को फैलाते जाइये, इसका विकास करते जाइये जिससे समाज और देश सुखी हो जाये, विश्व सुखी हो जाये . ये ज़रूरी नहीं है कि केवल गिनती के जो प्रमुख नेता या बड़े-बड़े आदमी हैं यह उन्ही का काम हो, केवल उन्हीं को क्रांति लानी है. यह काम तो आप सबको करना है .

छोड़ दीजिये विश्व को, देश को, किन्तु अपने आपको और अपने आस-पास के माहौल को तो इस प्रकार का बनायें कि सबको प्रति-क्षण सुख, शांति,पावनता और प्रेमानंद की अनुभूति हो. इसी ईश्वरीय प्रेम और आनंद का आभास और प्राप्ति करने-कराने का सहज प्रयास और सरल साधन है हमारे यहां का अभ्यास .

गुरुदेव सबको ऐसी शक्ति प्रदान करें

ईश्वर के रहस्य को समझें और उसके अनुसार अपना जीवन व्यतीत करे

गावो री दुलहिनि मंगल चारा, मेरे गृह आये राजाराम भरतारा .

तन रहनी मन पुनरव करिहौं पांचों तत्व बाराती

राम राम सौं भांवर लइहौं, आतम से रंग राती

नाभि कवल में वेदी रच ले, ब्रहमज्ञान उचारा

राम राय सो दूल्हों पायो, अति बड़भाग हमारा

सुर नर मुनि जन कौतुक आये कोटि तेंतीस उजाना

कहैं कबीर मोहे ब्याह चले हैं, पुरुष एक भगवाना .

कबीर साहब ने अपनी इस वाणी में भगवान राम का सीता के साथ विवाह होना बताया है. इस बारात में कौन कौन सम्मिलित हैं ? सब जीव जन्तु हैं, पंचतत्व हैं और कामनायें, इच्छायें सब बारात में हैं. बेदी कहाँ बनाई गई है ? नाभि चक्र प . यह भगवान विष्णु का स्थान है. उन्होंने सारा साधन बतलाया है. ये पंचतत्त्व जो हैं सोये हुए हैं मूलाधार चक्र में जो भगवान गणेश का स्थान है. हम जो भी शुभ काम करते हैं, भगवान गणेश की पूजा करते हैं.गणेश भगवान की पूजा का मतलब यह है कि शक्ति को साथ लें. आत्मिक शक्ति, परमात्मा की शक्ति प्राप्त करें. गुरु की सहायता लेकर इस आध्यात्मिक पथ पर चलने का साहस करें. पुरातन काल में पहले साधना मूलाधार चक्र से शुरु की जाती थी. सन्तों ने, विशेष कर कबीर साहब ने, जैसा कि उपरोक्त वाणी में स्पष्ट है, सीता और राम के विवाह की वेदी नाभि चक्र पर, भगवान विष्णु के चरणों में बनाई है. यहां से भगवान राम सीता को लेकर या भगवान शिव शक्ति (पार्वती जी) को लेकर, या भगवान कृष्ण राधा को लेकर अपने धाम जिसे सचखंड या सतलोक (जहाँ लोग सर पर चोटी रखते हैं वह ब्रह्मरंध्र का स्थान है) भी कहते हैं, पधारे हैं और उस स्थान की महिमा गाई है. सीता जी के मुखारविंद से यह वाणी कही गयी है कि भगवान राम की प्राप्ति के बाद कितना आनन्द मुझे मिला है. सीता जी अपनी सहेलियों से कहती हैं कि भगवान के गुणगान करो और इस पथ पर चलकर राम सरीखे पति को अपनाकर आप भी राममय हो जाओ.

गुरु नानक साहब ने भी लिखा है " सीता सीता महिमा मोय " - यानी सीता, ये सुरत जो है वह सत्य के साथ समा जाती है, वह सचखण्ड बन जाता है. मनुष्य को परमात्मा ने अपने अनुरूप बनाया है . " पिण्डे सो ब्रह्माण्डे " . जैसी शरीर में हमारी अवस्था होती है, शरीर में जिस स्थान पर हमारी सुरत की बैठक होती है, उस स्थान का आकर्षण महामन्दिर में

हमारा स्थान हो जाता है. जिन अभ्यासियों की सुरत गुरु या परमपिता परमात्मा में या भगवान राम के चरणों में लीन हो जाती है तो उनका सम्बन्ध परमात्मा के अस्तित्व के साथ हो जाता है. जिनकी सुरत शरीर पर है उनका सम्बन्ध तत्वों के साथ रहता है, दुनियादारी में रहता है. जिनकी सुरत मन पर है, वे चंचलता में रहते हैं, मन के स्थान पर ही रहते हैं. वायुमण्डल में भी जहां मन का स्थान है, यानी कभी उतार कभी चढ़ाव है, कभी तो आप परलोक के विचार उठाते हैं, कभी गिर जाते हैं. कभी जब बड़े अच्छे विचार आते हैं तो उस वक़्त सन्तों का, परमात्मा का ध्यान आता है, उनके निकट होते जाते हैं. जब नीचे गिर जाते हैं तो राक्षसों जैसी प्रवृतियां हो जाती हैं. यही रोज़ होता रहता है .

साधना यही है कि अपनी सुरत जो नीचे के स्थानों में फंसी हुई है को उठाकर आज्ञा चक्र या ऊपर के चक्रों में लाना है. इसके लिए बड़ी कोशिश करनी पड़ती है. जब मन चंचल अवस्था में होता है या बुरे विचार सोचता है तो उसका स्थान नीचे होता है. जब विचार सात्त्विक होते हैं या मन में स्थिरता आ जाती है तो कई सत्संगी भाई कहते हैं कि हमारी सुरत का पता नहीं लगता. आपने तो कहा था कि ध्यान आज्ञा चक्र पर करें, हमारा ध्यान तो ऊपर चला जाता है. तो यह तो अच्छी हालत है. कोशिश करनी चाहिये कि वहाँ हम अपने आपको स्थिर कर सकें. बच्चे अभी ज़ल्दी न करें. उनको बिना मुझसे पूछे आज्ञा चक्र से ऊपर जाने की कोशिश नहीं करना चाहिये. और दूसरे अभ्यासी भी बीच - बीच में अपनी हालत बताते रहें क्योंकि एकदम कोशिश करने में कभी कभी हानि भी हो जाती है. उपरोक्त पद में कबीर साहब ने हमें लक्ष्य बता दिया है कि अपनी सुरत को निर्मल करते हुए अपनी जीवात्मा को धीरे - धीरे ऊपर ले जाकर भगवान राम के चरणों में डालिए . वही राम भगवान कृष्ण हुए , वही भगवान शिव हु . राम परमात्मा हैं. परमात्मा को भिन्न - भिन्न नामों से पुकारते हैं .

नवरात्रों में पूजा पाठ करते हैं. शक्ति की पूजा होती है. हमें वास्तविकता समझनी चाहिये . हमारे भीतर में जो शक्ति सोई पड़ी है, उसे जगाना है. नवरात्रों में बच्चों की भी पूजा की जाती है. छोटे -छोटे बच्चों के चरण धोते हैं, उनकी पूजा करते हैं. बच्चों की पूजा उनकी पवित्रता, निर्मलता और सरलता की पूजा है. जब तक ये तीन गुण हमारे में नहीं आते, हम उन्नति नहीं कर सकते. हमें बच्चों के इन गुणों को धारण करना है. जब तक सरलता नहीं आयेगी, हम कितने ही विद्वान बन जायें, हमारी आत्मा परमात्मा में लय नहीं हो सकगी. गुरु महाराज का कहना है कि प्रकृति के दो रूप हैं - शिव और शक्ति, पुरुष ऑर स्त्री. जब तक पुरुष स्त्री के गुणों को नहीं अपनाता, कितनी भी साधना कर ले, वह आध्यात्म के अन्तिम चरण पर नहीं पहुंच सकता. इसी प्रकार स्त्री भी जब तक पुरुष की दृढ़ता को नहीं पकड़ेगी उसमें स्थिरता नहीं आयेग . स्त्रियों के गुणों को , सीता -लक्ष्मी -भगवती के गुणों को, अपनाये बिना भगवान राम की प्राप्ति कैसे होगी ? स्त्री और पुरुष दोनों के गुणों के संगम के बिना हमारी प्रगति नहीं होगी.

कोशिश करें कि गुरु महाराज के जो प्रवचन हैं उन्हें बार - बार पढ़ें. उनके जो अनुभव उसमें लिखे हैं , उन पर विचार करना चाहिये. उन्हें समझना चाहिये और विचार करके देखना चाहिये कि हमारे भीतर क्या कमियाँ, ग़लतियाँ हैं. भगवान राम जैसी स्थिरता ,उनके जैसे गुण आने चाहिये. बच्चों जैसी सरलता आनी चाहिये. पूजा जो है वह सरलता की है.

जितना आदमी बड़ा होता जाता है उसमें राग द्वेष आदि और विकसित होते जाते हैं. साधना यही है कि राग द्वेष इन दोनों से अलग होकर सीता जी जैसा निर्मल पवित्र होकर हम भगवान राम की पूजा करें.

वहाँ (परलोक में) जा कर, प्रभु के चरणों में जा कर, निर्णय किस बात का होगा ? वहाँ तो हमारी सरलता का निर्णय होगा . यदि सब कुछ करके भी हमारे भीतर में शत्रुता है, छोटे बड़े का प्रश्न है, स्त्री -पुरुष , बुराई - भलाई का ज्ञान है, तो अभी रास्ता दूर है. गीता का उपदेश सुनकर, भगवान कृष्ण की मर्यादा को पकड़ कर भी यदि हमारा राग -द्वेष ख़त्म नहीं होता, तो यह हमारा दुर्भाग्य है. हम हर वक़्त, प्रति क्षण हम मोह में फँसे रहते हैं. मोह घोर शत्रु है.

भगवान कृष्ण ने अर्जुन को प्रतीक बना कर सारे विश्व को उपदेश दिया. पहला उपदेश दिया कि अज्ञानता दूर करो. जो अज्ञानी है वह क्या समझ सकता है कि मोह क्या है, शुद्ध अनुराग क्या है, द्वेष क्या है ? हमारे अन्दर का सबसे बड़ा राक्षस है, हमारे दुःख का मूल कारण है - हमारा अहंकार. वही कभी हमारा गुरु बन बैठता है कभी ईश्वर , कभी किसी बुरे काम के लिए कहता है कि इस कम को करने में क्या बुराई है ?

जब अज्ञान से कुछ मुक्त हुए, अहंकार से मुक्त हुए तो भगवान अर्जुन को आत्मा पर ले आए . इसमें बड़ी कठिनाई आई है. अठारह अध्यायों में अर्जुन को भगवान ने प्रवचन दिए , कितने ही प्रश्न अर्जुन ने किए. परन्तु भगवान कितने दयालु , कृपालु थे कि उन्होंने तनिक भी बुरा नहीं माना. अर्जुन कितना भाग्यशाली था कि भगवान ने धीरे -धीरे उसको लाकर आत्म -स्थिति की अवस्था पर खड़ा कर दिया. विराट रूप के दर्शन दिए. समझाया कि कौन किसका है ? जिनको तुम पिता मान रहे हो कभी वो तुम्हारी सन्तान थे. अब भी उसे समझ नहीं आई, आत्म स्थिति क्या है ? वहाँ मेरा तेरा पन है ही नहीं. आप देखिए हमारा अभ्यास में मन लग जाता है पर जब ध्यान के बाद आँख खुलती है और हम दुनिया के व्यवहार में आते हैं तो कभी हमें स्वयं गुस्सा आ जाता है और कभी कोई हमें गुस्सा दिला देता है. हमारा जो ज्ञान क्षण भर पहले था, ख़त्म हो जाता है. हमें अनुभूति भी हो जाती है, परन्तु हमारा जीवन उसके अनुसार नहीं बनता. भगवान ने धीरे -धीरे अर्जुन को मोह से मुक्त कराया और कहा तू वीर है. तू तो ईश्वर की सन्तान है. वीरता तो तुम्हारा प्रतीक है. धर्म, ज्ञान यह तो तुम्हारी वृत्ति है. सभी आत्मा हैं. यह भगवान की रास लीला है. आत्मा तो एक ही है परन्तु विभिन्न शरीरों में रहने के कारण सबका दायित्व अलग -अलग कर दिया है. परन्तु अज्ञान के कारण हम इसे समझ नहीं पाते. गुरु की, ईश्वर की कृपा यदि हो जाए तो यह रहस्य समझ में आजाता है कि वास्तव में हम और परमात्मा एक हैं. कौन लड़ता है, कौन मरता है ? भगवान ने गीता में यह स्पष्ट किया है कि अगर युद्ध भी लड़ना है तो वह भी सेवा के रूप में, निष्काम भाव से लड़ना है.अपना स्वार्थ रख कर नहीं, मन में शत्रुता रख कर नहीं. जब तक प्रभु का यह रहस्य हमारी समझ में नहीं आता, हमारी साधना सफल नहीं हो सकती. यही साधना करनी है कि ईश्वर के रहस्य को समझें और उसकेअनुसार अपना जीवन व्यतीत करें.

गुरु गोविन्द सिंह जी का पूर्व जन्म बद्रीनाथ के निकट हेमकुण्ड में हुआ. वहां प्रेरणा हुई और पटना में उनका जन्म हुआ. आप लड़ाई में क्या करते थे. इनके प्रत्येक तीर के साथ डेढ़ तोला सोना लगा रहता था. जिस की मृत्यु उस तीर से होती थी उसकी क्रिया उस सोने को बेचकर होती थी. यानी उनका किसी के साथ बैर नहीं था. ईश्वर की इच्छा थी, ईश्वर का आदेश था, उसका पालन करने के लिये आपने यह सब लड़ाई लड़ी. उनका एक सेवक था जो सब घायलों की मरहम पट्टी किया करता था. सेवकों ने शिकायत कि गुरुदेव एक सी.आई.डी. का आदमी है जो हमारे शत्रुओँ से मिला हुआ है, उनके घायलों की मरहम पट्टी करता है. गुरुदेव ने उस आदमी को, जिसका नाम भीखाजी था, बुलवाया और कहा कि कहिए आप क्या कहते हैं, ये लोग जो कह रहे हैं क्या वह ठीक है. उन्होंने कहा कि गुरुदेव मुझे क्षमा करें. मुझे तो पता नहीं कि मैं किसकी सेवा, मरहमपट्टी करता हूँ. मुझे तो ऐसा लगता है कि मैं आपकी ही सेवा करता हूँ. सब सेवक यह सुनकर हैरान रह गये. यह तो उन सेवकों का अहंकार था. गुरुदेव ने कहा कि लड़ाई लड़ना कोई हमारा काम थोड़े ही है. यह तो हम ईश्वर की इच्छावश, उसकी आज्ञा का पालन कर ऐसा कर रहे हैं और देखिए आपके सामने यह महान व्यक्ति खड़ा है. भीखाजी को गुरु की पदवी दी और आज्ञा दी कि आप अपना पन्थ या सम्प्रदाय अलहदा चलाइये. उनके सम्प्रदाय का नाम सेवा पन्थी है, निर्मल सन्त कहलाते हैं .

साधना जीवन जीने का नाम है. इसी को राज़ी -ब -रज़ा (यथा लाभ संतोष) कहते हैं. "जेहि विधि राखे राम, ताही विधि रहिये ." .ज़बरदस्ती नहीं, रासलीला समझ कर. कबीर साहब कहते हैं कि मुझे तो खुली आँखों भगवान की लीला नज़र आती है. गुरु नानक देव कहते हैं कि कोई साधना सफल ही नहीं हो सकती जब तक हम ईश्वर की रज़ा को न समझेंगे और उसके अनुसार चलेंगें नहीं. केवल बुद्धि से ही समझ लेना काफी नहीं है. शिव नेत्र खुलना चाहिये, उसकी रासलीला के दर्शन होने चाहिये, और हमें उसकी रासलीला में सम्मिलित होकर निष्काम भाव से गीता के उपदेश के अनुसार संसार की सेवा करनी होगी.

अन्तिम उपदेश भगवान का यह है कि आसक्ति न हो . सब कर्म भगवान का काम समझकर, भगवान की प्रसन्नता के लिये करते रहिये. कोई आसक्ति नहीं. जहाँ आसक्ति होगी, संस्कार बन जायेगा . भरत जी को एक मृग के बच्चे की सेवा करने पर तीन जन्म लेने पड़े क्योंकि उस सेवा में मोह से संस्कार बन गया था .

आत्मा निर्मल हो जाय. गंगा के निर्मल प्रवाह की तरह हो जाय. कोई बुरा आदमी स्नान करता है या संत स्नान करते हैं, गंगा को कोई चिन्ता नहीं, कोई परवाह नहीं. वो तो अपने प्रवाह में सबको शान्ति प्रदान कर रही हैं. गंगा भगवान शिव के चरणों से निकलती है. भगवान शिव परमात्मा हैं, गंगा उनकी शक्ति है. उस शक्ति में निर्मलता है, शान्ति है, सत -चित -आनन्द सब गुण हैं. परन्तु हम ही उस निर्मल जल को गंगा के प्रवाह से निकाल कर गन्दा कर देते हैं. यह मन का रूप है. साधना यहीं है कि इस मलीनता को धोकर, शुद्ध होकर पुनःगंगा के प्रवाह में सम्मिलित हों .

" नानक सदा सुहागिन जिन जोती जोत समानी ." वो ही सुहागिन है, वो ही जिज्ञासु है जो परमपिता परमात्मा के चरणों में नितान्त लिपटा रहता है. चाहें भक्ति का साधन करें या ज्ञान का साधन करें, नीव तो है निर्मलता और शुद्ध आचरण. गुरु महाराज (परमसंत महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज) के साथ इलाहबाद गये. वहां गंगा जी के दूसरे तट पर एक मन्दिर है जिसमें आन्तरिक चक्रों की एक बड़ी मूर्ति है. वहां गुरुदेव ने भगवान शिव के तीन रूप बताये. पहला रूप तो प्रकाश का है. जिस लिंग की हम पूजा करते हैं वह भगवान शिव का पूरा ललाट है. इसके बाद सत है. हम गुरु की, शिव की, कृष्ण भगवान की, भगवान के जिस रूप की भी पूजा करते हैं उसी रूप में हमें भगवान के साक्षात दर्शन होते हैं तथा जो आदेश आप उनसे मांगें स्वप्न अवस्था में तथा साधना अवस्था में खुली आँखों मिलते हैं.

तीसरा रूप उन्होंने बताया - निर्मलता का है. गंगा जैसी निर्मलता. स्वयं में स्थित रहकर वह अप्रयास ही सारे विश्व को निर्मल करती है. यह संत का जीवन है. वो जहां बैठेगा वहीं गंगा है, वहीं तीर्थ है. उसको कुछ करना नहीं पड़ता. स्वाभाविक है कि ऐसे व्यक्ति के पास जो बैठेगा उसको भी शान्ति मिलेगी और धीरे -धीरे उसके भीतर में भी निर्मलता आजाएगी .

सन्त मत में इसका ही महत्त्व बताया है. ईश्वर कृपा से यदि कोई ऐसा सन्त मिल जाय तो आपको विशेष परिश्रम करने की ज़रूरत नहीं. ऐसे व्यक्ति के पास बैठें, उसका संग करें. ऐसे व्यक्ति के पास बैठने का अवसर मिल जाय तो एक कल्प की घोर तपस्या से कहीं अच्छा है. ऐसा सन्त ईश्वर बन जाता है, ईश्वर की आज्ञा का पालन करते हुए संसार का उद्धार करता है.

महर्षि रमण से कहा गया कि आप आश्रम में ही बैठे रहते हैं, बाहर स्थान स्थान पर जाकर, लोगों को प्रवचन देकर उनका उद्धार क्यों नहीं करते ? उनका उत्तर था - " आप क्या समझते हैं ? क्या यहां मौन में बैठे हुए मैं संसार का उद्धार नहीं करता ? सूरज जब आसमान में चढ़ता है तो क्या प्रकाश देने के लिए उसको कहीं जाना पड़ता है ? उसका प्रकाश तो सबको मिलता है. दोष हमारा है कि हम अपने मकान की खिड़की नहीं ख़ोलते. खिड़की खुली रहेगी तो प्रकाश अन्दर आयेगा ही. खिड़की बन्द कर लेते हैं, प्रकाश से वंचित हो जाते हैं. इसी प्रकार सन्त भी सूर्य समान हैं. जैसे -जैसे उनकी प्रगति होतीं जाती है वैसे - वैसे उनकी किरणें, तरंगे (vibrations) दूर तक जाती हैं. मुसलमानों में कहते हैं कि एक-एक गावँ या शहर का एक -एक ' क़ुतुब ' सन्त होता है जो उस जगह की देख भाल करता है. इस बात को सन्त लोग हमारे यहाँ भी मानते हैं. ईश्वर की ओर से सन्त की ड्यूटी लगी होती हैं कि वे जहां रहते हैं वहाँ की देख भाल करते रहे . गुरु महाराज कहा करते थे कि कभी -कभी साधना में ऐसे व्याक्तियों की कृपा का अनुभव होता है .

ईश्वर तक पहुँचने का साधन -सोपान है : नाम जाप सुमिरन

हर साधक की एक बड़ी जिज्ञासा होती है कि ' नाम' क्या होता है ? नीचे से छत के ऊपर जाने के लिए हम सीढ़ी का उपयोग करते हैं. सीढ़ी हमारा साधन बन जाती है, हमारी पद्धति बन जाती है. इसी तरह नाम भी ईश्वर तक पहुंचने का एक सरल साधन है, सोपान या सीढ़ी है.

" बहुत दिनन बिछुड़े थे माधव बिना तुम्हारे लेखे ,

कहै रविदास आस लागि जीवों चिर भयो पुरुख न देखे ."

संत रविदास जी भगवान के प्रति कहते हैं कि हे भगवान ! मैं जन्म-जन्मांतर से आपसे बिछुड़ चुका हूँ पर यह आशा लगाए बैठा हूँ कि इस जन्म में आपकी कृपा होगी तो मुझे आपके चरणों की समीपता प्राप्त हो जाएगी. सोचिये, जब इतने ऊंचे संत यह कहते हैं तो उनकी तुलना में हमारी क्या गति होगी ?

हम सब अपने प्रीतम परमात्मा से बिछुड़े हुए हैं. यह मिलन की जो क्रिया है उसको 'योग' भी कहते हैं और उसको 'नाम' भी कहते हैं. यह एक पद्धति है, एक तरीक़ा है, एक साधन है. सामान्यतः यह समझा जाता है कि हम जो 'राम-राम' कहते हैं, या 'ॐ-ॐ ' करते हैं ये ही 'नाम' है. लेकिन केवल यही 'नाम' नहीं है. यह तो उस पद्धति का, योग की उस क्रिया का श्रीगणेश है. ये अंतिम चरण नहीं है. ये सीढ़ी का प्रथम चरण है.

लकड़ी के दो टुकड़ों को जोड़ने के लिए जैसे हम सरेस लगाते हैं तो वो टुकड़े जुड़ जाते हैं, इसी तरह से जिस साधना के द्वारा हमारी बिछुड़ी हुई आत्मा परमात्मा से मिलकर एक हो जाती है उस साधना को हम ' नाम' कहते हैं. इसका बड़ा विस्तार है, जिससे अनेक ग्रन्थ भरे पड़े हैं. महापुरुषों की जीवनियों के उदाहरणों से हमें प्रेरणा मिलती है कि हम 'नाम' किस प्रकार से लें यानी हम अपनी आत्मा को परमात्मा में किस प्रकार से विलय करें और हम जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाएँ .

बात छोटी सी है परन्तु है बहुत महत्वपूर्ण. ईश्वर का रूप क्या है ? हम सभी जानते है . सभी संतों ने इसकी महिमा गायी है और कहा है कि - ईश्वर प्रेम है. " परमात्मा प्रेम है और प्रेम ही परमात्मा है " (God is Love and Love is God). परमात्मा तो प्रेम है और उससे मिलने की साधना भी प्रेम ही है. जैसे लकड़ी के दो टुकड़े हो गए हैं, वैसे ही हम भी ईश्वर से पृथक हो गए हैं और उससे मिलकर एक होने की साधना भी प्रेम ही है. यह 'प्रेम' की परिभाषा, प्रेम की विचित्र लीला बड़ी कठिन है जिसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता.

अपने सत्संग के भंडारों में हम सदा से ही पूज्य दादागुरु (महात्मा रामचन्द्र जी महाराज फतेहगढ़ी) के वचन सुनाया करते हैं. उनको यह आध्यात्मिक दौलत किस प्रकार से प्राप्त हुई. वह अभी बालक थे, उन्होंने विद्या पूरी नहीं करी थी. वह एक दिन बारिश में भीगते हुए, तूफ़ान से बचते हुए, जिस कोठरी में रहते थे उस कोठरी में आपस आये (जिस सराय में दादा गुरु ने कोठरी किराये पर ले रखी थी और जिसमें रहकर वह विद्याध्यन करते थे) रास्ते के बीच में एक महापुरुष भी एक कोठरी में रहते थे. उन महापुरुष ने देखा कि सर्दी है और बच्चा वारिश से भीगा हुआ है तो उन्होंने बड़ी करुणा से उस बच्चे को सम्बोधित करते हुए कहा , " नन्हे ! तुम्हारी यह क्या हालत हो रही है, जाओ फ़ौरन कपडे बदलकर मेरे पास आ जाओ. पूज्य दादा गुरुदेव कहते हैं कि महापुरुष के इन शब्दों में असीम आकर्षण भरा था, अदभुत खिंचावट थी. वह तुरंत ही कपडे बदलकर उन महापुरुष की सेवा में पहुँच गए.

उन महापुरुष फ़कीर (जिनका नाम परम पूज्य मौलाना फ़ज़्ल अहमद खां साहब था) ने पूज्य दादा गुरु के पहुँचने से पहले ही एक अंगीठी में आग जला रखी थी, बिस्तर बिछा रखा था. उन्होंने कहा, " बेटे, यहाँ बैठ जाओ और कुछ देर आग से सेक कर तब घर जाना." यह कहकर उन्होंने उन्हें अपनी रज़ाई उढ़ा दी. पूज्य लालाजी महाराज कहते थे कि "उस समय की मेरी अवस्था अनिर्वचनीय थी. मुझे नहीं पता था कि मेरा शरीर कहाँ है, मेरे मन के संकल्प-विकल्प कहाँ गए, बुद्धि का तर्क कहाँ चला गया, मेरा अपनत्व कहाँ है, मैं किस महान शक्ति के वश में आकर अपने आप को और अपने कर्तव्य को भूला हुआ हूँ " ?

जब उन महान सूफी फ़कीर ने अपनी शक्ति को खेंचा और पूज्य दादा गुरुदेव अपनी सामान्य स्थिति में आये तो उन्हें बड़ा ही प्यार दिया. उसके बाद भी मौन में, बिना बतलाये हुए , उस बालक (दादा गुरु) को वह बुज़ुर्ग सूफी संत अपनी अमृत प्रसादी प्रदान करते रहे. बीस साल की उम्र में उस महापुरुष ने उनको सब आत्मिक शक्तियां प्रदान कर दीं और कहा कि " बेटा, जाओ और संसार की सेवा करो. तुम जितनी अधिक सेवा करोगे तो जो कुछ मैंने तुम्हें दिया है वह और अधिक फलेगा -फूलेगा" . ये भी 'नाम' है, ये भी प्रेम की प्रसादी है.

इसी सन्दर्भ के समान हमारे गुरु महाराज (महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज) पूज्य लालाजी महाराज (दादा गुरुदेव) की सेवा में गए तो उन्होंने निवेदन किया कि, " मुझे भी रूहानियत का रास्ता बताइए, मुझे भी कोई पद्धति बताइयेगा कि मैं भी साधना करूँ. " लालाजी महाराज गुरुदेव को बहुत स्नेह करते थे. उन्होंने फ़रमाया कि, " नन्हे ! तुम्हें साधन की क्या ज़रूरत है.? तुम्हारे लिए तो मैं साधन करता हूँ. जो कुछ मेरे पास है, वह तुम्हारा है. " मौन में ही, बिना बताये, बिना किसी संकेत के, जो कुछ उनके पास था, वो सब गुरु महाराज को प्रदान कर दिया और अपने गुरुदेव के आदेशानुसार उनसे कहा, " जाओ, अब तुम सबकी सेवा करो. जितनी अधिक सेवा करोगे उतनी अधिक वह प्रसादी जो मैने तुमको दी है, वह फलित होगी ". ये है ' नाम ' की महिमा - नाम की शिखरता को सिद्ध कराने वाली पद्धति या साधना.

संत की कृपा जिस पर होती है वह किस समय होती है, यह कुछ कहा नहीं जा सकता. हमें तो सतर्क रहना चाहिए कि हम कोई ऐसी बात न कर जाएँ जो उनकी इच्छा के प्रतिकूल हो. इसकी सूफी भाषा में 'बे-अदबी' कहते हैं. हमारे यहाँ पहला करीना यानी पहला नियम जो है वो 'अदब' का रास्ता है. "अदब पहला करीना है, मौहब्बत के क़रीनों में ." कभी भूल कर भी इस अदब के क़रीने को, इसके नियम के भाव को न छोड़ें .

प्रेम में क्या करना है ? प्रेम साधन में कुछ किया नहीं जाता. कुछ मत करिए, कुछ करने की ज़रूरत भी नहीं है. ये साधन तो मेरे जैसे व्यक्ति के लिए हैं. आत्मिक साधन के लिए निष्क्रिय बनना पड़ता है. वैसे भी इस प्रेम की साधना में एक प्रकार की निष्क्रियता है. अपने इष्ट के साथ व्यवहार में भी केवल प्रेम ही है, और कुछ नहीं. अब प्रेम कैसे किया जाय, ये सिखाया नहीं जाता. इसका कोई स्कूल नहीं है जहां यह सिखाया जाता हो. गुरु महाराज कहा करते थे कि, " अगर प्रेम सीखना हो तो प्रेमियों का संग करो , उनका सत्संग करो, वहीँ तुम्हे प्रेम करने की प्रेरणा मिलेगी, मौहब्बत का सलीक़ा आ जायेगा ."

ये कैसी विचित्र लीला है ? गुरु गोविन्द सिंह जी ने नामदान दिया है, जिसको पंजाबी भाषा में 'अमृत' कहते हैं. उस वक्त इतना उपद्रव हो रहा था, इतिहास पढ़ने वालों को पता है कि उस वक्त हमारी क्या दुर्दशा थी. आवश्यकता थी कि उस वक्त जो अधर्म हो रहा था उसको ख़त्म किया जाय. इसलिए गुरु गोविन्द सिंह जी ने ललकार कर कहा था कि, " मुझे पाँच ऐसे व्यक्ति चाहिए जो अपना सिर दे सकें ." धीरे-धीरे पाँच व्यक्ति सामने आये, बाक़ी सब भाग गए, कोई नहीं टिका वहां. उन पाँच व्यक्तियों को उन्होंने अपनी शरण में लिया, उन्हें अमृत प्रदान किया, अपने जैसा बना लिया और फिर उन 'पंज' प्यारों को हाथ जोड़कर निवेदन किया कि अब आप मुझे नाम दान दें . (सर्वश्री दया राम, धर्मचंद, साहिब राम, हिम्मतराय और मौहकम राय - इनको अमृत दान देने के बाद इनके नामों के साथ 'सिंह' लगा दिया गया).

यह इतिहास की एक अनोखी घटना है कि गुरु कह रहा है अपने शिष्यों को कि वे उनको अमृत प्रदान करें. शिष्य उनको कहते हैं कि यह आप क्या कह रहे हैं. हमारे तो सब कुछ आप ही हैं, हमें अपने जो कुछ प्रदान किया है, हम पर अपने जो कृपा की है, उसका तो हम वर्णन नहीं कर सकते. हम आपको नाम कैसे दें ? एक शिष्य गुरु को नाम दे, यह कैसे हो सकता है ? परन्तु गुरु मज़बूर करते हैं और शिष्य विवश हो जाते हैं. जिस तरीके से गुरु ने अमृत प्रदान किया था, उसी तरीके से उन पाँच शिष्यों ने मिलकर अपने गुरु को अमृत प्रदान किया. अब गुरु क्या करता है, उन शिष्यों के प्रति ? शिष्य तो गुरु की महिमा करते ही आये हैं, इसके ग्रन्थ भरे हुए हैं - गुरु की महिमा पर, परन्तु गुरु शिष्य की महिमा का गुणगान करे, ये एक अनोखी बात है. तभी तो दशम गुरु गोविन्द सिंह जी ने इस अदभुत पद की रचना की

है :

' इन्हीं की कृपा से सजे हम हैं '

' सजे ' का मतलब है कि आत्म शक्ति इन्हीं भाइयों की, इन्हीं प्रेमियों की, इन्हीं प्यारों की कृपा से मुझे प्राप्त हुई है - ' नहीं तो करोड़ों ग़रीब मुझसे पड़े हैं '. वह अपने आप को ग़रीब कहते हैं. मुझसे ग़रीब करोड़ों हैं जो परमात्मा से पृथक होकर गलियों में पड़े हैं. इन्हीं की कृपा से मैं अब ईश्वर के समीप आ गया हूँ. उन्होंने शिष्यों की इतनी स्तुति की है जितनी स्तुति परमात्मा की की जाती है कि ये ही मेरे रूप हैं, ये ही परमात्मा हैं, ये ही सब कुछ हैं .

आप कहेंगे कि यह कैसी अनोखी दीक्षा है और ये नाम कैसा है ? ये है प्रेम की लीला . शिष्य में और गुरु में वास्तव में कोई अन्तर नहीं होता. हमारी साधना ही प्रेम की साधना है. ये जो कुछ भी हम दीक्षा के समय बताते हैं, ये एक तकनीकी साधना है क्योकि साधारण व्यक्ति को विश्वास नहीं होता जब तक उसको उसकी तकनीक न बताई जाये. वास्तव में हमारे यहाँ की जो साधना है वो प्रेम की ही साधना है. प्रेम कहते हैं - जहां कोई दुई नहीं, कोई विभाजन नहीं, जहाँ एकता ही एकता है, जहाँ शब्द नहीं, जहाँ केवल भाव का ही आनंद सागर है.

ये शब्दों का प्रयोग तो हमारे यहां कुछ सालों से होने लगा है क्योंकि प्रायः लोगों को तृप्ति नहीं होती जब तक गुरु कुछ बोले नहीं. ये साधन शब्दों का नहीं है. जहाँ शब्द ख़त्म हो जाते हैं, वहां से यह साधना शुरू होती है. इसीलिए हम मौन साधना पर बैठते हैं परन्तु हम लोग १०-१५ मिनटों के बाद ऊब जाते हैं. फिर कभी भजन पढ़ते हैं, कभी हम (गुरु) बोलते हैं ,कभी पुस्तकें पढ़ते हैं, मौन में जो प्रेम साधना करते हैं उसको ग्रहण करने की कोशिश करते हैं. आत्मा की तो कोई साधना नहीं है, उसको ग्रहण करने की यह कोशिश मात्र है, उसकी कोई पद्धति नहीं है. किस समय, किस प्रकार, ईश्वर की, गुरु की कृपा हो जाती है, कोई कुछ नहीं कह सकता. वह क्षण भर में होती है. उस क्षण की प्रतीक्षा ही हमारी साधना है. उस क्षण की लम्बी प्रतीक्षा का हमें शवरी के जीवन से पता लगता है. शवरी को स्वयं भगवान राम अचानक आकर कृतार्थ करते हैं, उसे नाम या प्रेम प्रदान करते हैं.

भगवान की, उनकी कृपा प्रसादी की, प्रतीक्षा भी एक साधना है. गोपियों की लीला भी एक प्रेम लीला है. गोप-गोपियाँ कभी तो भगवान को अपने ह्रदय में बसा लेते हैं, उनके साथ रास-लीला करते हैं, खेलते हैं, जो भी उनके मन में आता है वो कहते हैं. ये सब प्रेम-लीलाएं हैं. परन्तु प्रेम का जो अंतिम साधन है वह है अपने अस्तित्व को ख़त्म कर देना, उस महान शक्ति में विलय हो जाना .

' नानक सोई सुहागिन जिन जोती जोत समाना '

जो व्यक्ति अपनी ज्योति यानी अपनी आत्मा को परमात्मा रुपी ज्योति में लय कर देता है वही सुहागिन है, बाकी सब दुहागिन हैं. अभी भी वृंदावन में 'सदा-सुहागिन' नामक भक्तों का एक सम्प्रदाय ऐसा है जिसमें लोग स्त्रियां बन कर भगवान कृष्ण का नाम लेते हैं. वे गोपियों जैसे वस्त्र पहिनते हैं और वैसे ही बोलते हैं जैसे स्त्रियां बोलती हैं. सुहागिन बनने

का मतलब यह है कि वे भगवान को अपने अंग-अंग में समां लेते हैं. परन्तु यह वाह्य साधन है. सुहागिन का वास्तविक मतलब यह है कि जैसी गोपियाँ थीं वैसे ही हम बन जाएँ, हम राधा जी जैसे बन जाएँ. अपना कुछ है ही नहीं, सब कुछ भगवान का है. अपना कहने को भी नहीं, शब्द भी नहीं, वाणी भी नहीं है. तो वो ही व्यक्ति सुहागिन है जो अपने अहंकार को, अपने अस्तित्व को ख़त्म करके अपने आप को ईश्वर में लय करदे . केवल तू ही तू रह जाय और वो भी तू-तू करता ही मौन हो जाये .

' तू -तू करता तू भया मुझ में रही न हूँ

आपा फिरका मिट गया जत देख्यां तत तू '.

तो ये सब नाम हैं. नाम और नामी में कोई अंतर् नहीं है. सूर्य और सूर्य के प्रकाश में कोई अंतर नहीं है. ईश्वर और ईश्वर के नाम में कोई अंतर् नहीं है. ईश्वर अनामी है, उसका नाम भी अनामी है. जो कुछ हम बोल रहे हैं, बताने का प्रयास कर रहे हैं, ये अनामी नहीं है. ये केवल प्रयास है. उस नाम के आश्रित ही सारा विश्व खड़ा है. ईश्वर की कृपा, ईश्वर प्रेम, ईश्वर की शक्ति बस उसी के सहारे ये संसार चल रहा है. परन्तु अपने मन के कारण, अपने अहंकार के कारण , अपनी अनामी स्थिति को मनुष्य भूल गया है, उसने अपनी एक अलग दुनियां स्थापित कर ली है. मनुष्य दुनियाँ में, माया में, इतना ग्रस्त हो गया है, इतना फंस गया है कि वह यह भूल गया है कि वो ही अनामी है, वो ही सत्पुरुष है. उस स्थिति को जानने के लिए हम जो साधना करते हैं, जो पद्धति अपनाते हैं, उसको नाम कहते हैं .

इस भ्रम को दूर करने के लिए कोई एक साधना पद्धति नहीं है. स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने सत्रह पद्धतियां अपना कर भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों की, भिन्न-भिन्न धर्मों की पद्धतियों से साधना करके यह सिद्ध कर दिया कि सब धर्म, सब पद्धतियां सही हैं. ईश्वर सत्य है और सब धर्म ईश्वर को सत्य स्वरुप मानते हैं. ये सब आपस के झगडे हैं कि मेरी ही पद्धति ठीक है . जिस तरह मैं ईश्वरका नाम लेता हूँ या मैं ईश्वर से प्रेम करता हूँ वो ही सही है, बाक़ी सब ग़लत हैं - ऐसा कभी भूल कर भी नहीं कहना चाहिए .

सब रास्ते, सब पद्धतियां सही हैं. परमात्मा सत्य है और उसके मिलने का रास्ता भी सत्य है. वो प्रेम है अर्थात नाम और नामी एक ही हैं उसको पाने की पद्धति भी प्रेम है और सब धर्म यही सिखाते हैं. ये ही सब नाम हैं .

को कुछ है वो तेरा ही तो है

इस रास्ते पर चलने के लिए जिज्ञासु को अपना प्रयास तो करना ही पड़ेगा, जिसे निज कृपा कहते हैं. यदि प्रयास सच्चा होगा तो गुरूकृपा भी मिल जाएगी. परमात्मा की कृपा तो मिल जाएगी ही. ईश्वर ने हमें यह ज्ञान दिया है, हमारा कर्तव्य है कि हम इस ज्ञान का सदुपयोग करें. सदुपयोग यह है कि हम अपने इस जीवन में ही अपनी आत्मा को परमात्मा में लय कर दें .

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा ,

तेरा तुझको सौंप के क्या लागे है मेरा

आत्मा कीमती वस्तु है. उसको लगाव में रखना है . 'मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा ' परमात्मा के प्रति ऐसा भाव किसी-किसी में ही होता है. हमारे भीतर में जो अज्ञान है, अहंकार है वह समाप्त हो जाने पर ही आपको परमात्मा की अनुभूति होगी. यह भी एक प्रक्रिया है, तरीक़ा है, अपने आपको पहिचानने का - " मैं कौन हूँ ?"

महापुरुष कहते हैं कि आपका रूप क्या है ? यह शरीरादि नहीं. आत्मा का रूप है 'तत्वमसि' . परमात्मा इस आत्मा का पति है. अपने मन को, तम, रज और सत को उसमें लय कर दो.

' मन तू ज्योति स्वरुप है , अपना मूल पहिचान '

आत्मा परमात्मा को पहिचान ले, यही साधना है. आप वही हैं जो परमात्मा का रूप है. इसे अंग्रेजी में कहते हैं –

(I am that, what my God is} का भाव अपने व्यवहार में ले आएंगे तो आप जान जायेंगे कि मेरा सच्चा परमात्मा मुझ में ही है. आपके भीतर में विचित्र कोमलता पैदा हो जाएगी. उस कोमलता के साथ विचित्र आनंद की अनुभूति होगी और उस आनंद के साथ आपको परमात्मा की अनुभूति होगी. संक्षेप में, आपको कोमल व्यक्ति बनना है. आपका व्यवहार कोमल हो, दीनता का हो. सत्संग में जो भी व्यक्ति आते हैं उनका सबके प्रति व्यवहार दीनता का होना चाहिए. 'मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा'. यह मेरा, मैं , सब कुछ खत्म हो जाना चाहिए. ऐसा कुछ-कुछ गिने चुने व्यक्तियों में होता है. अगर हम ऐसा करेंगे तो हमें अपने आपको पहिचानने में दिक्क्त नहीं होगी.

'मन तू ज्योति स्वरुप है, अपना मूल पहिचान '. हे जीव ! तेरा स्वरुप वही है जो परमात्मा का स्वरुप है. यह संसार मृतमय है. तू अपने महत्व को पहिचान, और ईश्वर बनकर अपना जीवन व्यतीत कर. ईश्वर रूप का मतलब है,ईश्वर के गुणों का पालन करना.

हमारे देश की संस्कृति में सत्यं, शिवं, सुंदरं को सबसे ऊंचा स्थान दिया गया है. महापुरुष प्रेरणा देते हैं कि यदि इस रास्ते पर चलना है तो सत्यता को अपनाओ. इस सत्यता का सबसे बड़ा रूप है - सत्यं, शिवं, सुंदरं. इससे सत्य की प्राप्ति होती है. इसका गुण हैं कल्याणकारी भाव जो मनुष्य की सेवा करके प्राप्त किया जा सकता है और वह गुण उसकी सुन्दरता का प्रतीक है. शरीर की सुन्दरता नहीं, आत्मा की सुन्दरता. आत्मा के रस में कितनी सुन्दरता है ? कितनी मधुरता है ? इसे केवल उच्च कोटि के संत ही जानते हैं. वे संत आत्मा की स्थिति में होते हैं. हम उस गुण को प्राप्त नहीं पा सके हैं. हम सच्चा प्रयास नहीं करते, सत्संग में आने से, सच्चे गुरु की संगत में आने से - ये गुण धीरे-धीरे हममें आने लगते हैं. सत्यं, शिवं, सुंदरं . प्रत्येक व्यक्ति को, प्रत्येक जिज्ञासु को, प्रत्येक सत्संगी को इसे अपनाना चाहिए.

" तू तू करता तू भया, मुझमें रही न हूँ

आपा फिरका मिट गया , जित देखूं तित तू "

फिर उसका स्वभाव बन जायेगा. सिवाय ईश्वर के वह और कुछ नहीं देखेगा. हम भगवान राम और रावण की लीला देखते हैं. रावण को जलाते हैं. भगवान राम की स्तुति करते हैं. उनके गुणों को सराहते हैं. इतने वर्ष हो गए हैं. हमारे भीतर जो भगवान राम की प्रेरणा थी, प्रदर्शन किया था, वह हम सब भूल जाते हैं. राम का मतलब है - राम के गुणों को अपनाना. हम सबको ऐसा प्रयास करना चाहिए. हमको ईश्वर जैसा बन जाना है. ईश्वर हमारे भीतर में हैं. हम भूले हुए हैं. यह क़ुदरत, यह प्रकृति हमें बार-बार प्रेरणा देती है. भगवान राम ने ऐसा किया, परन्तु मनुष्य अज्ञानवश उनके सच्चे गुणों को अपनाने में असफल होता है. हमें मानव रूप मिला है, परमपिता परमात्मा के गुणों को अपनाएं. मेरे और तेरे का जो अंतर है वह खत्म हो जाये. मेरी आँखें जो कुछ देखें, वह परमात्मा के सिवाय और कुछ न देखें.

मैं मेरापन खत्म कर दें. इस संसार में अपना और पराया कुछ नहीं. कोई बेगाना नहीं. सब अपने हैं. सब ईश्वर के रूप हैं. सबका परमात्मा एक ही है. किन्तु मनुष्य तामसिक वृत्ति में ऐसा फंसा है कि उसके मन में यह बात आती ही नहीं. वह राग, द्वेष में फंसा है. साधना यही है कि हम अपने भीतर में ईश्वर जैसे गुण विकसित करें.

बाहर भीतर एक जानो, यह तप कथो ज्ञानी

कहु नानक बिन आपा चीन्हे मिटे न भरम की काई

बाहर भी, भीतर भी, परमात्मा को देखें. ज्ञान के आधार पर ईश्वर को देखें. ईश्वर के अलावा और कुछ नहीं. शरीर नहीं रहेगा, मन नहीं रहेगा तो आपका क्या रूप रहेगा ? वही रूप रहेगा जो रूप परमात्मा का है. यही सच्चा रूप है, यही सच्ची साधना है.

परमात्मा के नाम और गुणों का ज्ञान हो जाने से ऐसा व्यक्ति आत्मा में पहुंच जाता है. परमात्मा रूप हो जाता है. ऐसे व्यक्ति को ज्ञानी कहते हैं. वह निरन्तर आत्मिक ज्ञान में लीन रहता है. वह परमात्मा का रूप हो जायेगा. यही मुक्ति का द्वार है. यही मोक्ष है. आप अमर हो जायेंगे. देवताओं के देवता बन जायेंगे. आप और परमात्मा में कोई अंतर नहीं रहेगा. तब आप कह सकेंगे - " मेरा मुझमें कुछ नहीं है. तन, मन, धन सब तेरा ही है. तेरी वस्तु तुझे देने में मेरा क्या लगता है?

राम सन्देश : जनवरी-फरवरी २००८.

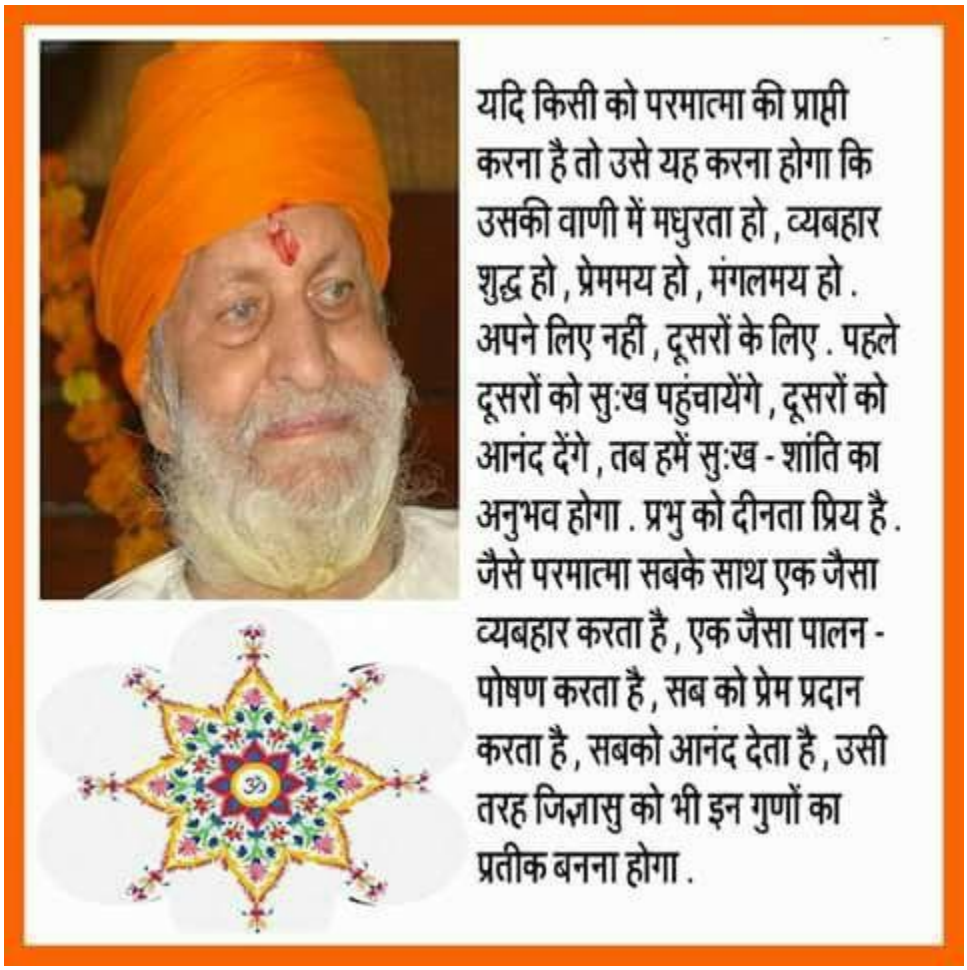

जलाशय रूपी संसार में कमल पुष्प जैसे रहना सीखें

संतों की वाणी, गुरुजनों के उपदेशों तथा धर्म ग्रंथों में प्रायः कमल पुष्प का उदाहरण दिया जाता है. कमल पुष्प जल में रहता है, जहाँ कीचड़ भी रहती है. जल में तरंगें उठती हैं, जल कमल पुष्प पर पड़ता है परन्तु जल उस पर ठहरता नहीं है. इसी प्रकार से इस संसार में रहते हुए हमें उत्तेजना, प्रकोप, शत्रुता, आक्रमण, शोक, वियोग आदि सबका सामना करना पड़ेगा. दुःख और तकलीफें आएँगी. जीवन की कला यह है कि हम कमल पुष्प की तरह सदा खिले हुए, आनंदित रहें. हमारे चित्त पर किसी प्रकार की छाया अंकित न हो.

जितनी भी हम साधना करते हैं - चाहें वह साधना हम ब्रह्म रंध्र पर करें,आज्ञा चक्र पर करें, हृदय चक्र या नाभि चक्र पर करें - ये सब मन को शांत करने की एक टैकनीक है. इनसे आप मन को एकाग्र कर लेंगे, आपके मन के भीतर शांति भी हो जाएगी, परन्तु यह हमारे जीवन का अंतिम लक्ष्य नहीं है. हम लोग साधना पर ज़ोर देते हैं, आँखें बंद करके आन्तरिक साधना पर ज़्यादा ज़ोर देते हैं. ठीक है,साधना ज़रूर करनी चाहिए, इसका अपना शुभ परिणाम होता है. परन्तु जब तक हमारा व्यवहार शुद्ध नहीं होता, ईश्वरमय नहीं होता तब तक समझ लीजिये कि यह साधना या अभ्यास तो केवल एक प्रक्रिया मात्र है. ऐसे ही शिकारी की भी शिकार करने की एक टैकनीक होती है. जब वह शिकार करता है तब उसकी एकाग्रता इतनी प्रबल होती है, ऐसी तीव्र होती है जितनी कि महीनों की कोशिश करने के बाद भी साधकों में नहीं होती. शिकारी की उस एकाग्रता का मछली पकड़ने के सिवाय और कोई लक्ष्य नहीं होता. उसका यदि कोई फल है तो यही कि वह मछली पकड़ लेगा, इससे अधिक और कुछ नहीं. शिकारी के अन्तर में जो हिंसा की मलीनता है वह और भी मज़बूत होती जाएगी.

हमें भी देखना है कि अभ्यास करते -करते एकाग्रता होने लगी, मन ठहरने लगा, परन्तु परमात्मा का, गुरु का या अपने इष्टदेव का नाम लेने और उनके स्वरुप का ध्यान करने से हमारा चित्त भी निर्मल हुआ या नहीं. क्या हम कबीर साहब की तरह अपने जीवन के अंतिम समय में भगवान से निवेदन कर सकते हैं कि हे प्रभु !जैसी श्वेत चादर (मानव शरीर का चोला) अपने हमें प्रदान की थी, वह चादर जैसी की तैसी (साफ़ सुथरी) हम आपके चरणों में अर्पण कर रहे हैं ? श्वेत चादर का भाव यह है कि हमारा मन पूर्ण रूपेण निर्मल हो जैसा कि एक शिशु का होता है. क्या मरते समय हमारा चित्त निर्मल होगा? मरना तो छोड़िये - क्या इस समय भी हमारा चित्त निर्मल है, विचार - शून्य है ? साधना का परिणाम तो यह होना चाहिए कि हमारा चित्त पूर्ण निर्मल हो जाये.

मीरा जी कहती हैं कि " हे प्रभु ! कृपा करो. मेरी चुंदरी अपने प्रेम के रंग में ऐसी रंग दो कि उसका एक भी कोना ख़ाली न रहे,उसमें कोई दाग़ न रहे. हमें भी प्रति क्षण अपना चित्त निर्मल करने का ऐसा अभ्यास करना है कि जिससे हमारे चित्त पर एक भी दाग़ न रहे. संसार में रह कर कर्म तो हमें करने ही होंगे परन्तु कर्म करने की यह कला होनी

चाहिए कि हमारे कर्मों के साथ हमारा कोई बंधन न हो. साधक को बारम्बार अपना आत्म-निरीक्षण करते रहना चाहिए, अपने भीतर में देखना चाहिए कि उसके भीतर में कौन -कौन सी त्रुटियाँ हैं ? यदि साधना करते-करते हमारी कमियां और कमज़ोरियाँ कम नहीं होती, हमारे चित्त की शुद्धि नहीं होती, हमारा चित्त निर्मल नहीं होता तो समझ लीजिये कि हमारी साधना में अभी कमी है.

हमारा प्रयास और कर्त्तव्य यही होना चाहिए कि संसार में कर्म के मामले में हमें कमल के पुष्प की तरह रहना चाहिए. कर्म तीन प्रकार के होते है. साकार या सकाम कर्म यानी जिन कर्मों के फल की इच्छा हमें स्वयं रहे. दूसरे प्रकार के निष्काम कर्म में फलाफल की कोई भावना नहीं रहती. इनसे हानि का भय नहीं है. तीसरे कर्म वे हैं जो स्वतः होते रहते हैं, जो ईश्वर आपसे अनायास ही करवाता रहता है - जैसे संत लोग ईश्वर में लीन रहते हैं और उनका शरीर स्वतः काम करता रहता है.

परमहंस रामकृष्ण जी की पुस्तकों में लिखा है कि वह माँ काली के पास बैठकर उनसे बातें करते थे, प्रश्नोत्तर होते रहते थे. उनके अपने भीतर की जितनी भी भावनाएं होती थीं वह उनको माँ के चरणों में रख देते थे. उनके प्रिय शिष्य नरेंद्र (बाद में स्वामी विवेकानंद जी) जब शुरू-शुरू में उनकी सेवा में आये तो उनके घर की आर्थिक स्थिति बड़ी खराब थी. उनको नौकरी दिलवा दें, इस इच्छा से नरेंद्र बाबा (परमहंस जी) के पास आये. बाबा ने कहा कि मैं तो नौकरी नहीं दिलवा सकता, तुम काली माँ से जाकर मांगो. नरेंद्र तीन बार माँ के मंदिर में प्रार्थना करने जाते हैं. संकल्प लेकर जाते हैं कि माँ तो सर्वशक्तिमान है, मैं माँ से जाकर नौकरी की याचना करूंगा. परन्तु नरेंद्र हर बार माँ के सामने जाकर नौकरी की बात भूल जाते हैं - केवल कहते हैं कि " माँ ! मुझे अपना प्रेम दो. " ऐसा लगातार तीन बार हुआ. अंत मैँ उनके यह बात समझ मैँ आगयी कि बाबा ही ऐसा कुछ कर देते हैं कि मेरी मति बदल जाती है. ईश्वर की इच्छा यही है कि मैं बाबा के चरणों मैँ रहकर उनकी सेवा करूँ.

कहने का तात्पर्य यह है कि अपनी कोई इच्छा न रखें. अपने आपको मृतक सरीखा बना दें. आजकल जितने भी साधक हैं अधिकांश, लगभग सभी अपनी ही इच्छाओं -अभिलाषाओं की बात बोलते हैं, दुनियाँ के पदार्थ मांगते हैं. दत्तात्रेय ने चौबीस गुरु बनाये. एक कन्या धान कूट रही थी, उसके हाथ की चूड़ियाँ बजती थीं. उसने एक को छोड़कर सब चूड़ियाँ उतार दीं. एक चील मांस का टुकड़ा लिए उडी चली जा रही थी, कौए उसके पीछे लगे थे. चील ने मांस छोड़ दिया तो कौओं ने भी उसका पीछा करना छोड़ दिया. प्रकृति की सब चीज़ों मैँ कोई न कोई गुण होता है. दत्तात्रेय ने सब मैँ से गुण अपना लिए. इसलिए उन्होंने कहा कि मैंने चौबीस गुरु धारण किये. गुरु तो केवल एक ईश्वर होता है. परन्तु उन्होंने जिनसे कोई सीख या शिक्षा ली वे चौबीस थे जिनका सहयोग या मार्गदर्शन उन्होंने ईश्वर के दर्शन प्राप्ति के लिए लिया.

मनुष्य को हमेशा विद्यार्थी की सी सीखने की प्रवर्ति चाहिए. संसार का ज्ञान इतना असीम हैं कि कोई नहीं कह सकता कि मैंने सब कुछ सीख लिया. सर आइज़ेक न्यूटन कितना बड़ा विद्वान और महान वैज्ञानिक था . उसने अपने लिए

लिखा है कि "मैं ज्ञानरूपी सागर तट पर बैठा हूँ और कंकड़ों से खेल रहा हूँ" . यह उसकी विनम्रता है,दीनता है. हम कितने ही पढ़ जाएँ, कितनी ही आत्म-प्रगति कर लें, परन्तु हमें हमेशा दीन बना रहना चाहिए. " प्रभु ! तेरे ज्ञान-भंडार के आगे, हिमालय पर्वत के आगे, मेरी बिसात एक चींटी जैसी है." इसी तरह कोई संत बन जाए, कितनी ही उच्चकोटि का ऋषि बन जाये, तो भी परमात्मा के भंडार के आगे उसकी स्थिति क्या है ?

इसीलिए संतगण तो अपने आपको हमेशा दीन बनाये रखते हैं. वो भीतर से प्रकाश रूप हैं, आनंद-स्वरुप हैं, जीवन स्वरुप हैं,परन्तु ईश्वर के चरणों में, अपने इष्टदेव के चरणों में, वो सदैव अपने आपको अकिंचन, छोटा, नन्हा तृण जैसा समझते हैं. गुरु नानक देव कहते हैं कि मेरे कर्म नीच समान हैं, तुम्हारा विरद है - मेरी रक्षा करो. " कहु नानक मैं नींच करम्मा, शरन पड़े की राखो शरमा ." किसी सच्चे संत को आपने यह कहते नहीं सुना होगा कि ' मैं गुरु हूँ, मुझे भजो, मेरी पूजा करो.' वे हमेशा दीन बने रहते हैं. छोटे बच्चे को कोई भी उठा ले, वह बच्चा उसे मुस्कराहट देता है. छोटे बालक जैसी सरलता तब आती है जब हम राग-द्वेश से रहित हो जाएँ. - यहाँ तक कि हमारा कथित शत्रु भी हमें अपना मित्र जैसा ही लगने लगे और वह भी हमें ऐसा ही समझे.

कबीर साहब ने फ़रमाया है कि - " या मरने से पाइये, पूरन परमानन्द ." मरने से ही परम आनंद की प्राप्ति होती है, प्रभु के दर्शन होते हैं. तो जीते जी मरना सीखें. ऐसा कहने का मतलब यह है कि हमारे भीतर में तनिक भी अहंकार न रहे, मेरापन न रहे. केवल ' तू ही तू' की रट रहे और इसी रट में हम उस परमोच्च स्थिति में पहुँच जाएँ जहाँ का वर्णन करने के लिए हमारे शब्द असमर्थ हैं. वह स्थिति हमारे रोम-रोम में बस जाए.

' तन में राम, मन में राम, रोम-रोम में रामहि राम". राम हमारे जीवन में प्रकट हों , विकसित हों, प्रकाशित हों, तब हम समझें कि हमारी साधना में कुछ प्राप्ति हुई है. हमें हमेशा स्व-निरीक्षण करते रहना चाहिए. जो भी त्रुटियाँ आप आपने कर्म में, चरित्र या व्यवहार में देखें, उनसे निवृत होना चाहिए , उन्हें दूर करना चाहिए. सबसे पहले छोटी-छोटी कमियों को दूर करना शुरू करें जिससे आपका उत्साह बढे. यदि आपसे स्वयं ऐसा नहीं हो पाता तो आपने जिनसे दीक्षा ली है, जिनको आपने अपना गुरु बनाया है, उनके चरणों में जाकर प्रार्थना करनी चाहिए. उनसे सहायता के लिए निवेदन करना चाहिए. अपने आपको भीतर से साफ़ करते चले जाएं - निर्मल, निर्मल से भी निर्मल, - मलिन जलाशय में भी खिलते हुए कमल पुष्प की भांति. यही दशा तो साधना की सफलता और सार्थकता की सीढ़ी है.

गुरुदेव आपको शक्ति दें .

" तुम्हारा कर्तव्य है कि अपने आप को पोशीदा करके उसको ज़ाहिर कर दो "

इश्तहार बाज़ी मत करो. अपने को छिपाओ और अपने कर्मों में, वाणी में, और अपने व्यवहार में ईश्वर को व्यक्त होने दो. आप जो भी कर्म करें,वे कर्म आपके हाथ -पाँव नहीं करें, आपका मन नहीं करे, बल्कि ईश्वर करे. यदि आप इतनी ऊंची जगह नहीं पहुँच सकते तो कम से कम कोई काम करने से पहले अपने अन्दर बैठे हुए इष्टदेव परमात्मा से पूछो कि - " मैं यह काम करूँ या न करूँ " ? अपने भीतर की आवाज़ सुनने का अभ्यास करें .

ईश्वर सर्वव्यापक है. भगवान राम ने एकता स्थापित की परन्तु हमने एकता में दीवार खड़ी कर दी, अहंकार -पैदा कर दिया . प्रत्येक कर्म, प्रत्येक विचार करने से पहले हम अपने भीतर में प्रश्न करें . एक दो दफे गल्ती होगी किन्तु अभ्यास करने पर आपके अंदर से सच्चाई की आवाज़ आएगी. मन बेईमान होता है, वह जानता भी है कि जो वह कर रहा है, गलत कर रहा है, परन्तु वह वहां से हटता नहीं है.

मन जीते जग जीत

जिसने मन पर विजय प्राप्त कर ली, समझिये कि उसने सारे विश्व पर विजय प्राप्त कर ली. साधना मन की है. हमें अपने मन को साधना है तथा इस मन पर विजय प्राप्त करनी है. यह फंसा हुआ है - मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार में. हमारे चित्त पर अतीत अंकित है. परिणामस्वरूप हमारा व्यवहार भी हमारे पिछले कर्मों के अनुसार होता है. मन, बुद्धि सब मलीन हो जाते हैं. चित्त तो मलीन है ही, उस पर इसके अतिरिक्त अहंकार तो हमसे और भी दुष्कर्म कराता है. रावण रुपी अहंकार खुद तो जलता ही है और दूसरों को भी जला देता है. जितनी भी साधना है, इस मन पर विजय प्राप्त करने की ही साधना है. इसके भीतर में भगवान बैठे हैं, गुरु बैठे हैं.

कुछ लोगों ने कुछ रीति -रिवाज़ों को पूरा कर लेना ही धर्म या मज़हब समझ रखा है. पूज्य लाला जी कहते हैं - " इन छोटी-छोटी बातों को कोई विशेष महत्व नहीं देना चाहिए. मैं ऐसे धर्म को चाहे वह किसी भी पंथ का हो, धर्म या मज़हब नहीं मानता."

जब हम अपने इष्ट-देव के अनुसार अपना जीवन नहीं बना पाए तो दोष हमारा है या हमारे धर्म का. अधिकांश दोष धार्मिक लोगों का है. वे अपना जीवन ठीक से नहीं चलाते. अतः अपने अनुयायियों को सच्ची प्रेरणा नहीं देते. धर्म में भला ही दोष न हो - क्षमा चाहता हूँ, आज जो लोग धार्मिक शिक्षा दे रहे हैं और अपने को धार्मिक नेता मानते हैं, दोष

उनका है. वे अपने पूर्वजों को भूल चुके हैं, उनके जीवन को भूल चुके चुके हैं, उनकी बातों को भूल चुके हैं तथा उनके साहित्य को भूल चुके हैं. हम उनके साहित्य का गलत अर्थ निकालते हैं.

हम राम और कृष्ण के अनुयायी हैं. परन्तु हम भूल चुके हैं कि राम का जीवन कैसा था, उन्होंने कितना बलिदान दिया था ? हम भगवान कृष्ण का जीवन भूल गए हैं. भगवान कृष्ण ने कितना बलिदान किया था ? जरासिन्ध से लड़ाई होती थ . वह हर साल मथुरा आता था और मथुरा पर आक्रमण करता था . लोगों को कष्ट होता था. कृष्ण मथुरा छोड़ कर द्वारिका चले गये . उन्होंने यह नहीं सोचा कि संसार उन्हें कायर कहेगा. वह इस कारण गए कि मथुरा के लोगों को दुःख होता था. हज़ारों लोग लड़ाई में मारे जाते थे. कृष्ण दूसरों का कष्ट अपना कष्ट और दूसरों का सुख अपना सुख समझते थे.

मज़हब वास्तव में विशाल ह्रदयता, अच्छी आदतें, सदाचार, सहानुभूति, एक विचार , आत्मानुभव और प्राणिमात्र के साथ एकता का विचार सिखाता है.

महापुरुषों के जो गुण होते हैं उन्हें अपनाना साधना है. छोटी-छोटी बातों पर लड़ाई करना साधना नहीं है. जिज्ञासु का हृदय विशाल होना चाहिए. यदि हमारे एक गाल पर कोई थप्पड़ मारे तो हमें अपना दूसरा गाल भी आगे कर देना चाहिए, इधर भी मारो. हमें सहनशीलता को अपनाना चाहिए.

अच्छी आदतें आपका स्वरुप बन जाएँ. हम जब भगवान कृष्ण की गीता पढ़ते हैं तो हम गीता का रूप बन जाएँ. यदि रामायण पढ़ते हैं तो रामायण का रूप बन जायें. हम जब महापुरुषों की वाणी पढ़ते हैं तो उन महापुरुषों के गुण हमारे गुण बन जाएँ. वे गुण हमारे द्वारा विकसित हों. हमारे आचार-विचार शुभ होने चाहिए. हमारे कर्म दूसरों के हित में होने चाहिए, केवल अपने हमारे अपने हित में ही नहीं होने चाहिए. हमें स्वार्थी नहीं बनना है.

सहानुभूति

हमारी सब के साथ सहानुभूति होनी चाहिए. दुश्मन भी हो तो उसके साथ भी सहानुभूति होनी चाहिए. गुरु गोविन्द सिंह जी के एक भक्त ने उन्हें बताया कि औरंगज़ेब के जो सिपाही घायल हो जाते हैं उनकी सेवा गोविन्द सिंह जी का ही एक सिपाही करता है,उनकी मरहम पट्टी करता है. एक सैनिक ने देखा कि हम शत्रुओं को मारते हैं और हमारा ही यह सिपाही उन्हें ज़िंदा कर देता है. उन्होंने गुरुदेव से इसकी शिकायत की. गुरुदेव ने कहा -' ठीक है , उसे बुलाओ '. उस सिपाही को बुलाया गया. उससे पूछा गया तो उसने कहा , " मैं तो आपके आदेशों का पालन करता हूँ. आपकी पूजा कर रहा हूँ. मुझे मुसलमान (औरंगज़ेब के सिपाही) नहीं दिखते, आप ही दिखते हैं. मैं तो आपकी ही मरहमपट्टी कर रहा हूँ. " गुरुदेव बहुत प्रसन्न हुए, उसको ' पंडित ' की उपाधि प्रदान कर दी और उनसे कहा कि - " आप सेवा पंथ अलग से चलाएं ". आज भी उनका मुख्यालय जगाधरी (पंजाब) में है. उस पंथ का नाम "सेवा पंथ" है. यह घटना हमें यह स्मरण कराती

है कि गुरुदेव के हृदय में कितनी विशालता थी. संतों के हृदय में यह विशालता होनी चाहिए. उनसे कह दिया - " जाओ भक्तों की सेवा करो. " सैकड़ों वर्षों में कोई एक महापुरुष आता है जो ऐसी बातें करता है. कइयों को तो यह बातें सच्ची ही नहीं लगती. कहते हैं कि ये तो कहानी-किस्से हैं. ऐसा कैसे हो सकता है ? परन्तु महापुरुषों का जीवन बड़ा विचित्र होता है. इसीलिए वे महापुरुष कहलाते हैं. हमें उनकी आत्मकथा पढ़नी चाहिए ताकि हमें भी प्रेरणा मिले और हम भी उच्च कोटि का जीवन व्यतीत कर सकें .

हमें प्रत्येक प्राणी मात्र के साथ प्रेम और एकसा बर्ताव करना चाहिए. उनके प्रति एक विचार हो. ॐ राम " ॐ राम " ॐ - यही विचार हो. आत्मानुभूति के लिए अपना सारा बल लगा देना चाहिए. चाहे कोई शत्रु हो, चाहे कोई मित्र हो, सबके साथ एकसा व्यवहार करें. सबमें ईश्वर व्यापक है, ऐसा समझ कर सबकी सेवा करें.

गीता का बारहवाँ अध्याय पढ़िए और गीता का द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अध्याय पढ़िए. आपका व्यवहार कैसा होना चाहिए, ये सब बातें आपको वहांगी.

फकीरों के से कपड़े पहन लेना, अपने को फ़क़ीर कहना, इससे आप फ़क़ीर नहीं बन सकते. फ़क़ीर को फक्कड़ बनना पड़ता है. बुरे,अच्छे स्वभाव, राग-द्वेष - सबका परित्याग करना पड़ता है.

ब्रह्मज्ञानी निर्मल से निर्मला

आपको ब्रह्मज्ञानी बनना है. पूर्णरूपेण निर्मल बनना है. आदि-रूप परमात्मा बनना है. हमारा जीवन ही हमारी साधना है. हमें यह सब करना है.

मेरा आपके चरणों में अनुरोध है, महापुरुषों के जीवन -चरित्र पढ़ें. उनके चरणों में बैठें और अपना जीवन उनके जीवन के अनुसार बनाने का प्रयास करें. ऐसा नहीं समझें कि केवल नाम लेने से, टीवी आदि देखने से हमारे जीवन में सफलता आजाएगी. इसके लिए तो बलिदान देना पड़ेगा. बलिदान किसका ? अहंकार का, मेरा और मेरेपन का. हम सब अहंकारी हैं. कोई छोटी सी बात किसी से कह दो तो वह क्रोध से जल उठता है. वह अहंकार का प्रतीक है. हम सभी चोर हैं. हमारा आचरण उतना ऊंचा नहीं है जितना होना चाहिए. शुद्ध आचरण ही वास्तविक साधना है. हम जो साधना बताते हैं वह सहायक तो है परन्तु सच्चा अभ्यास अपने आचार-विचार को आदर्श बनाना है. इसीलिए हमारे यहां व्रत रखने का रिवाज़ है. हम एकादशी का, पूर्णिमा का व्रत रखते हैं. जवान पर नियंत्रण रखना चाहिए . महापुरुषों ने रीति-रिवाज़ बनाये हैं. परन्तु हम भूल गए हैं. आज हम सब खाने-पीने में लगे रहते हैं . टीवी आदि देखते हैं , राग-द्वेष में फंसे रहते हैं और चाहते हैं कि ईश्वर की प्राप्ति हो जाये.

देश की हालत

आज देश की हालत, आर्थिक स्थिति, इतनी ख़राब हो गयी है कि नम्बर -२ वाले व्यापारी और नौकरी पेशा (गलत ढंग से काम करने वाले) तो खुश हैं, बाकी सब लोग गरीबी में मर रहे हैं. जो नंबर दो का काम करते हैं उनको समाज में सम्मान मिलता है, उनकी इज़्ज़त होती है. जो शुद्ध जीवन व्यतीत करते हैं उनपर आरोप लग जाते हैं, नौकरी से निकाल दिए जाते हैं. यह केवल कुछ आदमियों की ही बात नहीं है, हम सबका जीवन यही है.

आध्यात्मिक सफलता में सदव्यवहार का स्थान सर्वश्रेष्ठ है. हम गीता में कर्मयोग पढ़ते हैं जो अति महत्वपूर्ण है. किन्तु कोई भी व्यक्ति गीता के दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवे अध्यायों का पालन नहीं कर पाता. बेईमानी बढ़ती जा रही है. कहने को तो हम कहते हैं कि हम तो पूजा-पाठ करते हैं, हमारा देश संसार में सबसे ऊंचा है. परन्तु वास्तविकता क्या है हम सब देख रहे है ? धर्म में, समाज में स्थिति प्रतिक्षण गिर रही है. बहुत सुधार की आवश्यकता है .

प्रभु के चरणों में प्रार्थना करें कि भगवान राम जैसे, भगवान कृष्ण जैसे महापुरुष भारत में पुनः आवें और भारत की जैसी स्थिति जैसी पहले थी वैसी पुनः बना देवें. यह कलयुग तो साँपों के बीच में रहने का युग है.

प्रभु आपको शक्ति दें. आप प्रभु जैसे बन सकें. यही सच्ची साधना है .

परम आनंद की प्राप्ति के लिए तन-मन-धन से समर्पण

"जब तक गुरु का सत्संग नहीं करेंगे, तब तक सच्ची प्रीति पैदा नहीं होगी. " पूज्य गुरुदेव (डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज) के इन शब्दों में एक बड़ी महत्व की बात छिपी हुई है. गुरुदेव समझा रहे हैं कि जब तक साधक ईश्वर के अनंत आनंद की प्राप्ति के लिए किसी महापुरुष या गुरु का सत्संग प्राप्त नहीं करेगा, तब तक वह प्रभु का प्रेम पाने का सच्चा अधिकारी नहीं बन सकता.

हम वास्तव में गुरु का सत्संग नहीं करते. पहले तो सच्चा गुरु मिलना ही बहुत कठिन है . जब तक ऐसा न हो, कोई भी आदरणीय पुरुष, जिनके प्रति आपको विश्वास हो, उनके चरणों में बैठें. बैठने का मतलब यह नहीं है कि आपने सुबह जो दैनिक समाचार पत्र पढ़ा उसकी उनसे चर्चा कर ली. यह किसी महापुरुष के पास बैठना नहीं है. बैठने का तरीक़ा यह है कि पहले आपके मन में उस व्यक्ति के प्रति पूर्ण श्रद्धा होनी चाहिए, जिसको उर्दू में 'अदब' कहते हैं.

हमारे यहां जिज्ञासु अपने आपको स्त्री कहते हैं, हमारे देश की संस्कृति में साधना भी स्त्री रूप में होती ह . जब स्त्री की शादी होती है तो वह अपना तन-मन-धन सब कुछ अपने पति के चरणों में अर्पित कर देती है. परमात्मा ने स्त्री को जो भी विशेष गुण दिए हैं, विवाह के बाद पति के घर जाने पर वह वे सब पति को अर्पित कर देती है. वह आपना शरीर, मन और धन जो कुछ उसका अपना है, वह सब स्वाभाविक सरलता से पति को सौंप देती है. इसके लिए उसे कोई बल नहीं लगाना पड़ता है.

आज संस्कृति बिगड़ती जा रही है. पश्चिमी सभ्यता की गलत नकल या अंधी होड़ बढ़ती जा रही है, विशेषकर बच्चों पर, लड़कियों पर थोपी जा रही है. पश्चिम में लड़कियां ज़रा-ज़रा सी बात पर लड़ती झगड़ती रहती हैं - तलाक़ तक करा लेती हैं .

प्रत्येक जिज्ञासु को किसी महापुरुष को पति सामान मानकर उनका संग करना चाहिए. ऐसा सोचें कि वही मेरे लिए सब कुछ हैं, मुझे उनसे कुछ नहीं मांगना. पत्नी भी जो अपने पति की सच्चे रूप में सेवा करती है, अपने लिए कुछ नहीं मांगती वह भी संतों की तरह यही कहती है :

" मेरा मुझमें कुछ नहीं, जो कुछ है सो तेरा,

तेरा तुझको सौंपते , क्या लागे है मोरा . "

वह पति को परमेश्वर का प्रतीक मानती है. प्रतीक ही नहीं, कई बहिनें उसे परमात्मा ही मानती हैं. जो बहिने अब भी ऐसा करती हैं, वे तो अन्तर में इतनी निर्मल, पवित्र और उच्च हैं कि वे बड़े-बड़े संतों से भी ऊंची होती हैं. जिज्ञासु को ऐसा ही बनना है.

यदि सौभाग्य से कोई मार्गदर्शक महापुरुष, गुरु, मिल जाये तो उनके चरणों में बैठ जाएँ. वहां आपको क्या प्राप्त होगा ? ऐसा समझिये कि मानों बदल गरज रहे हैं बिजली चमक रही है, हलकी-फुलकी फुहारों की वृष्टि हो रही है . उस समय कितना अच्छा लगता है. इसी प्रकार जब आप उस महापुरुष के सामने बैठेंगे तो वैसी ही शांति, शीतलता की अमृतवर्षा होगी और आपका मन आनंद से भर जायेगा. आपको ईश्वर की कृपा मिलेगी.

अंग्रेजी में इसे ' ग्रेस ' (grace) कहते हैं ' झिम-झिम बरसे अमृतधारा ' - उस महापुरुष, गुरु के शरीर से अमृतधारा की वृष्टि हो रही है और आप उसमें भीग रहे हैं. यदि आपको ऐसी शांति नहीं मिलती तो वह कोई संत या पूज्य व्यक्ति नहीं है. यदि उसके सामने बैठकर आपका शरीर शांति और आनंद की अमृतधारा से नहीं भीग जाता, तो वह संत कैसा ? बार-बार बैठो और देखो. परमार्थ में जल्दी नहीं करना चाहिए .

ईश्वर का कोई रूप नहीं और उसके अनेक रूप भी हैं. प्रभु मनुष्य रूप धारण करते रहे हैं. उन्होंने कभी राम का रूप धारण किया, कभी कृष्ण का रूप धारण किया और कभी किसी साधक ने उनको गुरुनानक के रूप में देखा. ये सब मन के रूप हैं जो ईश्वरीय गुणों से तदरूप बन कर ईश्वर ही बन जाते हैं, ईश्वर के गुण उन रूपों में आ जाते हैं. जो सूक्ष्म कृपा ईश्वर से मिलती है, उससे ज़्यादा प्रत्यक्ष कृपा उस संत, सद्गुरु, महापुरुष के द्वारा उनके पास बैठने से मिल जाती है. संत के ह्रदय से निकलकर कृपा हमारे ह्रदय में सहज में ही भर जाती है .

महाराजा जनक एवं अष्टावक्र का दृष्टांत

महाराज जनक ने यह घोषणा करा दी थी कि जो मुझे एक क्षण में ईश्वर के दर्शन करा देगा मैं उसका सेवक बन जाऊँगा. इस शर्त को पूरा न कर पाने पर अष्टाव्रक के पिता को महाराज ने जेल में डाल दिया था. और भी बहुत से विद्वान थे जो उनको अनुभूति नहीं करा पाए थे, इस कारण से उन्हें भी कारागार में डाल दिया गया था. बालक अष्टाव्रक ने भी राजा जनक की घोषण सुनी. अष्टाव्रक 'महाराजा जनक के दरबार में गए. वह जब वहां पहुंचे तो डयोढ़ीवानों ने उन्हें अंदर नहीं जाने दिया. इन्होने कहा कि ' मैं राजा जनक को एक क्षण में ईश्वर के दर्शन करा दूंगा.' इतने छोटे बच्चे के कहने पर सेवकों ने राजा जनक को बताया तो उन्होंने उसे अंदर आने की आज्ञा दे दी, अष्टाव्रक दरबार में गए जहां राजगुरु और अनेक मंत्री बैठे थे. अष्टाव्रक का शरीर बेडौल और आठ ओर से टेढ़ा था. साधारणतः लोग किसी अपंग, अंग रहित व्यक्ति को देखकर उसकी विचित्रता पर हस पड़ते हैं. इसी प्रकार अष्टाव्रक को देखकर मंत्री लोग हंसने लगे. उनको देखकर अष्टाव्रक भी हंसने लगा .

महाराजा जनक ने कहा , ' बालक तू जानता नहीं कि यहां कैसे-कैसे विद्वान पुरुष बैठे हैं ओर तू इनको देख कर हंस रहा है. ' बालक ने अपनी बात कही, ' महाराज आप मुझको तो भला-बुरा कह रहे हैं, अपने मंत्रियों को क्यों नहीं कहते ? मुझे तो ये चमड़े के व्यापारी लगते हैं, क्या ये मंत्री होने के योग्य हैं ? जो मेरे चमड़े के शरीर को देख रहे हैं, वो विद्वान कैसे हुए ? जनक जी ने उसके तर्क को सुना तो वह उस बच्चे के तर्क को मान गए और उन्होंने अपने मंत्रियों को शांत रहने के लिए कहा .

आखिर में जनक जी ने उस बच्चे को अपने पास बैठा लिया. बच्चा बोला - " मैं आपको एक मिनिट में ईश्वर के दर्शनं करा सकता हूँ" . राजा ने पूछा - कैसे ? अष्टाव्रक ने कहा - " आपको मेरी एक बात माननी होगी. आ[प यह शपथ लीजिये कि मैं जो कुछ कहूंगा , आप मानेंगे . महाराज स्वयं एक उच्चकोटि के संत थे. बोले , ' हाँ बेटे ! तुम जो कहोगे, मैं मानूंगा .' तब बालक ने कहा - ' आप ईश्वर के दर्शन करना चाहते हो तो मेरे हाथ पर अपना हाथ रखो और कहो, मैं अपना तन, मन और धन सब कुछ समर्पित करके आपको गुरु मानता हूँ .' राजा जनक ने सोचा यह बच्चा है, खेल तमाशा कर रहा है, सो उन्होंने वचन दे दिया.

वचन करवा कर बालक चुप होकर बैठ गया. राजा जनक भी चुप होकर बैठ गए. उसके चुप और राजा के चुप में अंतर था. राजा इधर-उधर देखते थे. कभी अपने शरीर को, कभी अपने घुटने को इधर उधर हिलाते थे . यह देखकर अष्टाव्रक ने कहा, ' महाराज आप यह क्या कर रहे हैं ? आपका यह शरीर इधर-उधर क्यों हिल रहा है ? ' महाराज बोले - थक जाता हूँ, क्या करूँ' . बालक बोला - ' यह शरीर तो तुम्हारा है नहीं. शरीर को हिलाने से पहले मुझसे पूछिए .' राजा जनक समझ गए कि यह बालक नादान बच्चा नहीं है और वह बोले ' गुरुदेव , भूल हो गयी. मेरा शरीर पर इतना अधिकार नहीं है . '

जैसा कि सत्संग में होता है कि प्रायः कोई भी व्यक्ति बिना विचार के नहीं बैठता. मुख्य कारण है कि मन में तेरा मेरा -चलता रहता है. अष्टाव्रक पूछते हैं कि -' महाराज , यह आप क्या कर रहे हैं ? आप क्या सोच रहे हैं ?. ' महाराज सकुचाये, बोले - 'मेरे मन में विचार आ रहे हैं , क्या करूँ .' अष्टाव्रक ने फिर कहा - ' आपने तो मन मुझको बेच दिया है, फिर आप विचार क्यों उठा रहे हैं, आपका क्या अधिकार है ?' राजा जनक शरमा गए और धीरे से बोले,' भगवन ! यह मेरे वश में नहीं है.'

जब लगि ध्यावै वैरी -मीत, तब लगि निशचल नाहीं .

चाहे महाराज जनक हों , चाहे हम हों , सारे दिन विचार उठाते रहते हैं - चाहे बुरे विचार या भले. यह ' वैरी -मीत ' का अर्थ है - किसी के प्रति अच्छा या किसी के प्रति बुरा भाव बनाये रखना. खाना खा रहे हैं तो कह रहे हैं बुरा-अच्छा, कुछ देखते या सुनते हैं तो तुरंत कहते हैं भला-बुरा. चौबीस घंटे तेरे-मेरे में फंसे रहते हैं. जब तक मेरे-तेरे को नहीं छोड़ेंगे, तब

तक चाहे सत्संग में आयें, या कोई साधना करें, कुछ लाभ नहीं होगा . मंदिर में जाएँ या गुरूद्वारे में यह मन स्थिर नहीं होगा. इसके लिए दो बातें बताई गई हैं - एक आसन स्थिर हो और दूसरी मन स्थिर हो.

बालक अष्टावक्र चुप हो गए. थोड़ी देर बाद एक आदमी आया. राजा जनक से कहा, 'महाराज, मेरी बेटी की शादी है , कुछ आर्थिक सहायता कर दें.' राजा जनक ने ख़ज़ाने के मंत्री को बुलाया और कहा कि, ' इस व्यक्ति को इतना धन दे दो .' अष्टावक्र ने पुनः टोका , ' आपने तो अपना तन, मन धन सब मुझे दे दिया फिर ख़ज़ाने पर आपका अधिकार कैसा ? आप धन कैसे दे सकते हैं ? आपने अपना वचन सच में दिया था या यों ही कह दिया था ?'

राजा जनक सोच में पड़ गए, यह तो असाधारण बालक है, महाविद्वान है. फिर कहा , ' गुरुदेव ! (पहले बेटा कहा था अब गुरु मानने लगे) न मेरा तन है, न मेरा मन है और न अब मेरा धन है. मेरा तो अब कुछ भी नहीं रहा. सच मानें मैने दे तो सब कुछ दिया. अब आप अपनी कृपा का आशीर्वाद दें .' तब जाकर उन्होंने महाराज जनक की ज्ञान-शिक्षा सम्पूर्ण की और महाराज जनक ' विदेह ' कहलाये.

किसी महापुरुष के पास बैठें, किसी तीर्थ स्थान या धार्मिक स्थान पर जाएँ, तो हमारी आंतरिक अवस्था शांत होनी चाहिए. शांति नहीं आएगी, जब तक हम प्रतिक्रिया करते रहेंगे, तेरा-मेरा करते रहेंगे. हम अपने प्रति -दिन के जीवन में देखते हैं कि यदि हमसे कोई विपरीत बात करता है, दुर्व्यवहार करता है, तो हमें क्रोध आ जाता है. हम अपना सारा दिन इसी क्रोध में गुज़ार देते हैं. जब किसी महापुरुष के पास जाएँ, शांत बैठें. केवल जब वे कुछ पूंछें तो उसका उत्तर दे दें, राजा जनक की तरह. वैसे भी यह मानना और करना चाहिए कि मेरे शरीर से, मन से, बुद्धि से, संसार से,मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रहा और अब न कोई मेरा मित्र है और न कोई शत्रु है . - " पेखि पेखि नानक बिनसायी '

हमें भी बहुत कुछ सीखना है

सबसे पहले हमारे आचरण में सरलता, मधुरता और दीनता आनी चाहिए. यह सोचना कि मैं बहुत बुद्धिमान हूँ, मेरी तुलना कौन कर सकता है, अमुक व्यक्ति अच्छा है, अमुक बुरा है - हमारा सारा दिन इसी उधेड़बुन में बीत जाता है और मन चंचल रहता है. कई बार इन कारणों से रात को नींद नहीं आती. डॉक्टर सोने के लिए नींद की गोली दे देते हैं. इससे विचार दब जाते हैं और शरीर भी हिलना -डुलना बंद कर देता है. जब मन में विचार नहीं आएंगे तो ब्यक्ति सो जायेगा.

योगी और प्राकृतिक चिकत्सा करने वाले जिस व्यक्ति को नींद नहीं आती उसे शवासन कराते हैं जिससे उसे नींद आ जाती है और शरीर भी हल्का हो जाता है. मन को शांत करने के लिए शवासन के साथ मंत्र आदि बताते हैं. लेकिन यह बहुत कठिन है. शवासन में भी तभी सफलता मिलती है जब मन में चंचलता कम हो. शरीर को तो स्थिर किया जा सकता है परन्तु मन को स्थिर करना बड़ा कठिन है. इसके लिए तो आप जिनकी सेवा में जाते हैं, वही आपको उपाय बताएंगे.

एक बात और ध्यान रखें. महापुरुष के पास कुछ भेंट लेकर जाएँ. भेंट किसकी लेकर जाते हैं - तन, मन और धन की अर्थात इनसे लगाव हटा लें. भाव से सन्यासी बन जाएँ. महाराजा जनक स्वयं बड़े ज्ञानी और महान थे. उनका दृष्टांत तो इसलिए बताया जाता है कि वही सब कुछ सीखना हमारे लिए भी आवश्यक है.

ईसाई धर्म यह बताता है कि " God is forgiveness " - अर्थात ईश्वर क्षमा का स्वरुप है. प्रत्येक साधक को ईश्वर के क्षमा का यह गुण अवश्य अपनाना चाहिए. यहां तो पचास-पचास वर्ष पुरानी कही बातें भी हमारे मन में जमी रहती हैं, खत्म नहीं होतीं. हज़रत ईसा ने कहा है - " मेरा पहला नियम है कि यदि आपको मेरे पास आना है तो पहले अपने शत्रु को क्षमा कर दो ". ईसा ने उन्हें फांसी पर चढाने वाले जल्लादों को भी क्षमा कर दिया था. अभ्यास यह है कि हम बार-बार अपने विरोधियों को क्षमा करने का प्रयत्न करें. परन्तु जिसने आपका अपमान किया हो या सब कुछ छीन लिया हो, उसे क्षमा करना बड़ा कठिन है. गुरुग्रंथ साहब और रामायण में भी क्षमा की महिमा बताई गयी है. फरीद जी तो इससे भी आगे बढ़ कर कहते हैं कि ' जो तुम्हें मुक्का मारे तो इसके बदले में तुम अपनी ऊँगली भी न उठाओ और उसके घर जाकर उसके हाथ-पैर दबाओ. ' क्या हम ऐसा कर सकते हैं ? क्या हमारा व्यवहार ऐसा हो पाता है ? नहीं, किसी का भी नहीं. हमारे संस्कार इतने सख्त हैं कि हममें दीनता या करुणा आती ही नहीं. हम कितनी भी साधना करें, दीनता, करुणा और स्नेह प्रकट होते ही नहीं. जब तक हमारा व्यवहार नहीं सुधरेगा, कुछ नहीं होगा .

संक्षेप में, कहना यही है कि जब आप गुरु या महापुरुषों कि सेवा में जाएँ ,तो कुछ भेंट लेकर जाएँ. तन-मन की भेंट ले जाने का अर्थ है कि आप अपने चित्त को निर्मल करें, स्वभाव शुद्ध करें, व्यवहार को सरल करें और अपने अवगुणों को दूर करें. जब आप ऐसे शुद्ध होकर जायेंगे तो ईश्वर की कृपा आपको प्राप्त होगी. यही उन संतों की सत्संगति का प्रसाद है. आप चाहे मंदिर में जाएँ, चाहे मस्जिद या गुरूद्वारे में जाएँ, हर जगह यही प्रसादी मिलती है.

मैं एक बार अपने मित्र के साथ हरिद्वार गया. वहां कई तीर्थ-स्थलों को देखा. जब हमलोग लौटे तो मेरे मित्र ने मुझसे पूछा कि ' अमुक-अमुक स्थान पर जाने से आपको क्या अनुभव हुआ ? मुझे दो-तीनं जगह अच्छी लगी थीं, जिनका मुझ पर काफी अच्छा प्रभाव पड़ा, बाकी जगह पर मुझे कुछ महसूस नहीं हुआ . मैने उनको वही बता दिया. मित्र ने भी कहा कि, ' आपका विचार बिलकुल ठीक है, वहां अब भी शुद्धता है, अब भी लोग भक्ति-भाव से प्रार्थना करते हैं .' भूलकर भी किसी की साधना, आस्था या भक्ति की बुराई न करें. मेरा अनुभव यही है कि मैं सभी पवित्र स्थानों पर उस प्रसादी को प्राप्त करता रहा हूँ.

मैं पहले आर्य-समाजी था. उसी रूप में मेरी शिक्षा पूरी हुई. मैं यह सब नहीं मानता था. लेकिन जब गुरुदेव की सेवा में आया तो मेरे विचारों में बहुत परिवर्तन आया. मैं अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि हमारे यहां का साधन यही सत्संग है - अर्थात गुरुजनों की सेवा में बैठना और अपने विचारों और आचरण को शुद्ध करते रहना और उनके प्रेम की गंगा में स्नान करना.

पूज्य लाला जी महाराज बताते थे कि कई सिलसिलों में लोग बुराइयों को छोड़ने के लिए कठोर तप करते हैं, धूप में बैठते हैं, शरीर को कष्ट देकर तप करते हैं. लेकिन हमारे यहां की साधना ऐसी नहीं है. लालाजी फरमाते थे कि पहले हम एक बुराई को ले लें और उससे छूटने का प्रयत्न करें, करते रहें, चाहे उसमें एक जन्म ही क्यों न चला जाये. वे हमें समझाते हैं कि कभी अहंकार में मत आओ कि मैं इतनी पूजा -पाठ करता हूँ. यह सब छिपाकर रखो . ' कहु नानक मैं नाहि कोई, राखि लेउ सरनाई '.

रजनीश जी ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि एक बार उनके पास उनके एक मित्र आये हुए थे जो स्वयं सन्यासी थे. तभी एक साधक भी आया. आपने उनसे कहा कि आप इसके सामने बैठ जाओ, सिर्फ बैठना, बोलना कुछ मत. उनके मित्र शंकालु पर जिज्ञासु थे, चुपचाप बैठ गए. सामने वह व्यक्ति बैठा था. थोड़ी देर बाद उस सन्यासी मित्र से पूछा ,

' तुम्हारे मन की क्या हालत रही ?' वह तो उस एक साधारण व्यक्ति के सामने बैठे थे, तो भी उन्हें ग्रेस मिली. रजनीश जी ने उन्हें बताया कि जब एक साधारण व्यक्ति के सामने बैठने से ग्रेस (grace) मिली तो महापुरुषों के पास बैठने से ग्रेस (grace) क्यों नहीं मिलेगी ?

अंत में यही निवेदन है कि आप भी साधना के लिए सुखासन, सिद्धासन अथवा शवासन, जो भी आपको अच्छा लगे, उसमें निर्मल होकर गुरु के सन्मुख बैठें तो सही. संसार को कुछ मिनटों के लिए भूल जाएँ. आपको प्रसादी अवश्य मिलेगी. कठिनाई यह है कि हममें गंभीरता नहीं होती है. हम मैं-मैं करते रहते हैं. जिसे सच्चा सत्संग करना आगया,उसे तो ईश्वर अवश्य मिलेगा.

अतः साधना में किसी भी सुखद आसन में बैठिये, भूल जाइये मित्रता, शत्रुता आदि द्वंदों को. मन को शांत करके बैठकर तो देखिये, आपको कितना आनंद मिलता है. वह तो परम आनंद का सागर है, उसके आनंद की वृष्टि हो रही है. साधन या अभ्यास यही है कि इन शारीरिक और मानसिक अवरोधों को समाप्त करें और अष्टावक्र की महाराजा जनक जी से हुई तन-मन-धन समर्पण की बातें याद रखकर शांति से गुरु के सन्मुख या ध्यान में बैठ जाएँ. आपको उस परम-आनंद की प्रसादी अवश्य मिलेगी.

राम सन्देश - जुलाई-अगस्त २००० `

परमार्थ पथ के सभी साधन सही हैं क़दम-क़दम बढे चलो लक्ष्य सबका वही है

कभी भूलकर भी यह नहीं कहना चाहिए कि जिस संप्रदाय के हम हैं वही सर्वोत्तम है, या दूसरे जितने धर्म हैं उन सब में दोष हैं. परमात्मा एक ही है, हम सब उसी के अंश है . हमारे लोग हों या दूसरे संप्रदाय के लोग हों, सब परमपिता की संतान हैं. पिता सबका एक है - यही उपदेश भगवान कृष्ण ने अर्जुन को दिया. गीता का दूसरा अध्याय यहीं से शुरू होता है.परन्तु मनुष्य इस वक्त भूला हुआ है. इस वक्त से मतलब यह है कि प्रत्येक मनुष्य चाहे इस समय , चाहे पिछले समय में, चाहे आने वाले समय में हो अज्ञान व मोह में फंसा हुआ, वहअपने अस्तित्व को भुला हुआ है.

मनुष्य अपने आपको ही भुला बैठा है कि आखिर वो है कौन ? वो समझता है कि मेरा यह जो शारीरिक बाहिरी रूप है यही मैं हूँ. कोई और थोड़ा सा अभ्यास करता होगा वो यह समझता है कि मैं केवल शरीर नहीं हूँ ,कोई और हूँ. मैं मन हूँ जो सोचता है. कोई व्यक्ति जो और आगे बढ़ता है तो सोचता है - नहीं मैं भूला रहा, मैं शरीर नहीं, मैं मन नहीं, मैं तो बुद्धि हूँ. जब साधना करते-करते ज्ञानचक्षु खुलते हैं तब व्यक्ति यह समझता है कि, नहीं मैं तो अज्ञान में भूला रहा, मैं संसार में फंसा रहा. मेरा स्वरुप यह नहीं जो दीखता है. मैं शरीर नहीं हूँ. मैं प्राण, मन, बुद्धि या आनंद नहीं हूँ, मैं तो स्वयं आत्मा हूँ, परमात्मा का अंश हूँ. मैं तो स्वयं वही हूँ.

सतयुग में व्यक्ति अनुभव करता था कि वह और परमात्मा एक ही है. सब लोग ' आत्मलोक ' में रहते थे. आत्मलोक का अर्थ है कि इस संसार में रहते हुए भी ईश्वर से तदरूप रहते थे. यही कारण है कि उस आत्म-स्थित समाज का या सतयुग का इतिहास हमें नहीं मिलता. उस युग में वह उत्कृष्ट कोटि का मानव क्या करता था, कैसे रहता था, कहाँ-कहाँ उसका साम्राज्य था - इसका इतिहास हमें नहीं मिलता. इतिहास मन और बुद्धि का हो सकता है. स्थूल जगत का हो सकता है, भला आत्मा का क्या इतिहास होगा ?

इसके बाद त्रेता युग आया, भगवान राम का युग. यहां उसका कुछ प्रभाव तो रहा पर उसकी मुख्यता नहीं रही. मनुष्य सात्विक मन और सात्विक बुद्धि के स्थान पर आ गया, धर्म के स्थान पर आ गया. धर्म के साथ अधर्म या अज्ञान का साम्राज्य भी होने लगा. अज्ञान-ज्ञान का, बुराई -भलाई आदि का संघर्ष तब ही शुरू हो गया. दोनों रूप दिखाई देने लगे. यदि एक तरफ़ ब्राह्मण है, जिसने बड़ी साधना व् तपस्या की है, तो दूसरी ओर राक्षस है. ब्राह्मण वह है जिसे ब्रह्मज्ञान हो गया है, जो अपनी आत्मा को, ईश्वर को पहचानता है. इस नाते रावण सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण हुआ है इतिहास में. परन्तु मानसिक अहंकार के कारण, आत्मा का स्वरुप छिप गया ओर उसे राक्षस कहा जाता है. यह भी ईश्वर की लीला थी कि आत्मिक-अनुष्ठानों के कारण सारी शक्तियां उसके पास थी या यों कहें कि ईश्वर की जो शक्तियां होती हैं वो सारी उसमें आ गयी. ये शक्तियां उसने अपने जप, तप या बाहुबल से प्राप्त की थीं. भगवान शिव से कितने ही सारे वरदान उसने ले लिए. मृत्यु को उसने अपनी खाट के पाए से बाँधा हुआ था .

परन्तु उसके पूर्व-जन्म के प्रारब्ध कर्म-भोग के संस्कार थे. इतनी शक्तियां पाकर रावण के मन में अहंकार आ गया कि मैं तो सभी कुछ हूँ. संसार को चाहिए कि वो मेरी ही पूजा करे. ईश्वर की पूजा क्यों ? उसकी राजधानी लंका स्वर्ण की बनी थी. यानी ऐश्वर्य के समस्त पदार्थों की कोई सीमा नहीं थी, सभी कुछ उसके पास था. बहुत सारी सिध्दियां उसके पास थीं. परन्तु अहंकारी मन के कारण उसकी सुंदरता, उसकी प्रतिभा और गुणों की सत्यता, उसकी शुद्ध बुद्धि सब कुछ मलिन हो गयीं. इसी अहंकार के कारण उसके सिर पर गधे का रूप बनाया या दिखाया गया. उसको इतना दोषी बना दिया कि आज तक हम उसको पाप का प्रतीक मानकर हर वर्ष दशहरा पर उसको जलाते हैं. रावण नितांत दोषी ही दोषी था - ऐसी बात नहीं है. हमें उसके गुणों को भी ध्यान में रखना चाहिए. सामान्य मनुष्य उन गुणों को नहीं सराहता है - लक्ष्मण ने नहीं सराहा, हनुमान जी, अंगद आदि किसी ने नहीं सराहा. परन्तु भगवान राम ने उसके गुणों को जाना और सराहा.

मनुष्य का, संसार का, विस्तार और विकास होता रहा है और होता रहेगा. ज्यों- ज्यों आत्मा का विस्तार हुआ, मन का भी विस्तार होता गया. फलस्वरूप शांति की बजाय अशांति भी बढ़ती गयी. ईश्वर की मौज थी, भगवान राम की मौज थी कि यह युद्ध हुआ. रावण का नाश उसी मौज के कारण हुआ. भगवान राम मर्यादा पुरुषोत्तम थे. मर्यादा से मतलब है जो शरीर की मर्यादा का भी पालन करे, अर्थात प्रकृति के जो नियम हैं उनका पालन करे. इसमें प्राण भी आ जाते हैं. शुद्ध मन की जो प्रकृति है उसमें मनुष्य को अपनी इन्द्रियों, शरीर और मन को शुद्ध -बुद्धि द्वारा संयम में लाना चाहिए और बुद्धि को आत्मा के अधीन बनाना है. अधीन का मतलब है आत्ममय बनाना है, ईश्वरमय बनाना है. हमें इस संसार में अपना जीवन सफल बनाना है तो जब हम ईश्वरमय बन कर रहेंगे तभी हमें सुख की अनुभूति होगी. भगवान राम का स्वरुप मर्यादा पुरुषोत्तम स्वरुप है.

आनंद तो सभी चाहते हैं. सब के मन में छिपी हुई इच्छा रहती है कि उनको आनंद मिले. मनुष्य आनंद ढूंढता है शरीर और इन्द्रियों के सुख में और सांसारिक पदार्थों, संतान और अन्य संबंधों के सुख में. यहां तक कि कभी-कभी तो मनुष्य अँधा होकर दूसरों के दुःख को दुःख नहीं समझता और उनका शोषण करके अपना सुख खोजता है.

इस समय कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है जो यह कह सके कि मैं सुख में हूँ, आत्मिक आनंद में हूँ. साधना सब लोग कर रहे हैं, लक्ष्य सबकी वही है - आत्मिक आनंद की प्राप्ति. किन्तु आत्मिक आनंद की प्राप्ति तब तक नहीं होगी, जब तक व्यक्ति भगवान राम की तरह मर्यादा का पालन नहीं करेगा.

इसके बाद हम द्वापर युग में आ जाते हैं. इस काल में मर्यादा में धीरे-धीरे और कमज़ोरी आती गयी. तब भगवान कृष्ण का आगमन हुआ जिन्होंने अर्जुन को - जो मानव मात्र के उद्धार के लिए हमारा प्रतीक था, सारे विश्व के मानव समाज का प्रतीक था, तत्व-ज्ञान समझाया. परमपिता परमात्मा ही कृष्ण के रूप में अर्जुन के माध्यम द्वारा सारे संसार को उपदेश दे रहे हैं.

एक प्रकार से भगवान कृष्ण ने भगवान राम के उपदेश को दोहराया है कि अर्जुन पहले मर्यादा में आयें. उन्होंने समझाया कि शरीर की मर्यादा क्या है, मन की मर्यादा क्या है, बुद्धि की मर्यादा क्या है - आत्मा क्या है ? अर्जुन भगवान कृष्ण के अति प्रिय मित्र हैं, सखा हैं. भगवान उसे सब कुछ देना चाहते हैं परन्तु अर्जुन में मोह-माया के कारण स्थूलता आ गयी है. स्थूलता का मतलब यह है कि सतयुग से समय परिवर्तन होते-होते आत्मिक सूक्ष्मता कम होती गयी और उसमें स्थूलता बढ़ती गयी.

हमें भी तो कोई बात जल्दी से समझ नहीं आती. हम परमात्मा निकट हों, आत्मा हमारे भीतर में बैठी रहे और हममें सुधार न हो ? भगवान् हम सब के ह्रदय में बैठे हैं और हमारे में सुधार न आये, उसका कारण क्या है ? कारण है कि हम सब स्थूल वृत्ति के हो गए हैं. अर्जुन को भी यह बात जल्दी समझ में नहीं आयी, धीरे-धीरे समझ में आयी कि शरीर और मन को काबू में करने के लिए बुद्धि का आश्रय लेना है और फिर बुद्धि के द्वंदों को छोड़कर आत्ममय बुद्धि बनानी है, जिसको आत्मा में या परमात्मा के चरणों में विलय करना होगा. शुरू-शुरू में कृष्ण भगवान का उपदेश सुनते हुए अर्जुन कितनी सच्चाई से, सरलता से कह उठा - " आप बहुत ऊंची बातें करते हैं, कभी ज्ञान योग की, कभी कर्म योग की तो कभी धर्म की बातें करते हैं. मेरी समझ में तो कुछ नहीं आ रहा. मेरा तो अभी तक मन ही स्थिर नहीं हुआ है. "

यही बात आप सब लोग कहते हैं. कोई ऐसा है जो न कहता हो ? हाँ, प्रत्येक साधक को अपने मन की स्थिति, चाहे जैसी भी हो, अपने इष्टदेव के चरणों में सत्यता से कहनी चाहिए. हम सबकी अर्जुन के माध्यम से भगवान समझाते हैं - " तू जो कुछ कह रहा है, बिलकुल ठीक है. मन को काबू करना बड़ा ही कठिन है. वायु को मुठ्ठी में बंद किया जा सकता है, परन्तु मन सरलता से काबू में नहीं आता. " अर्जुन पूंछता है - तब मैं क्या करूँ ?" भगवान इसके लिए उपाय भी बतलाते हैं कि - " इसके लिए दो ही साधन हैं : अभ्यास का और वैराग का."

अभ्यास कहते हैं कि गुरु जो भी शिक्षा दें, जो भी साधना करने का रास्ता बतलायें , उसको, उनकी तालीम को, अपने स्वयं के जीवन में उतार लेना. एक महापुरुष की जो शिक्षा होती है वो उनके जीवन का अनुसरण करने से मिलती है. इसीलिए भगवान कृष्ण अर्जुन को कहते हैं - " तू मेरा अनुसरण कर, मेरे जीवन का अनुसरण कर. जो मैं कहूँ, जो साधना बतलाऊँ, उसका बार-बार अभ्यास कर. मन दौड़ेगा, इधर-उधर भटकेगा, उसको फिर उसी स्थान पर लगा देना अर्थात उसका आत्मा के साथ संयोग कराना है."

मन का चंचल स्वभाव तो हमारे मन को इधर-उधर ले ही जायेगा. वो तो मन की मूल वृत्ति और गुण है. परन्तु हमें तो उससे बचने का अभ्यास करना चाहि . इसीलिए हमें बचपन से यही पढ़ाया -लिखाया जाता है - कोशिश करो, कोशिश करो और बार-बार कोशिश करो. आखिर कभी तो हमारा मन स्थिर होगा, मन कभी तो थक कर आराम करेगा. कभी तो हम भटकना भूल जायेंगे.

भगवान ने अर्जुन को दूसरा पाठ पढ़ाया है - वैराग का. बिना अभ्यास के वैराग नहीं सधता. अभी तो हम संसार के सुखों में ही लिप्त हैं. संसार के सुख भी भांति-भांति के आकर्षण रखते हैं. शरीर के सुख हैं, मन के सुख हैं. विचार या कल्पनाओं में बड़ा सुख मिलता है. परन्तु ये सब नीचे दर्ज़े के सुख हैं. हमारे सामने कोई चुनौती आ जाती है और हम उसको हल कर लेते हैं तो हम सोचने लगते हैं कि हमारी बुद्धि तो बड़ी तेज़ है. हमें उसका अहंकार हो जाता है और उसी सुख में, उसी के आनंद में हम डूब जाते हैं.

हमें तो इन सब सांसारिक तथा मन-बुद्धि के सुखों से आगे बढ़ना है क्योंकि हमें अपनी आत्मा को परमात्मा में विलय करने का ध्येय प्राप्त करना है. यह बिना वैराग के नहीं होगा. हमें पहले अपना वैराग सिद्ध करना होगा कि यह सब कुछ जो मैं देख रहा हूँ वह मैं नहीं हूँ. आपने बार-बार पढ़ा-सुना है कि पांच प्रकर के शरीर है . यह ' अन्नमय ' शरीर मैं नहीं हूँ. दूसरा 'प्राण ' का जो शरीर है वह भी मैं नहीं हूँ. इसी प्रकार ' मनोमय ', 'ज्ञानमय ' .' आनंदमय कोष भी मैं नहीं हूँ. इसके बाद एक और आयाम आता है ' आकाश ' वो भी मैं नहीं हूँ. वास्तव में मैं तो शुद्ध आत्मा हूँ - हमें ऐसी स्थिति तक पहुंचना है.

कहने से कुछ नहीं होने का है कि " मैं आत्मा हूँ, मैं ब्रह्म हूँ ". हमें ब्रह्म कहने से पहले, आत्मा कहने से पहले, इनके ऊपर जो आवरण पड़े हैं उनसे मुक्ति प्राप्त करनी है. यही वैराग अपनाना है. बे-राग हो जाओ, इनसे सम्बन्ध तोड़ लो. किन्तु यह वैराग तब तक नहीं सधता जब तक व्यक्ति इससे पहली ' विवेक ' की सीढ़ी पार नहीं करता.

वैराग का मतलब यह नहीं है कि घर से लड़ बैठे तो वैराग हो गया. बूढ़े हो गए तो सबको नसीहत देने लगे, यह वैराग नहीं है. जितना व्यक्ति बड़ा होता जाता है, जितना वह आध्यात्मिकता पर बढ़ता जाता है, उसके शब्द कम होते जाते हैं, उसके विचार कम होते चले जाते हैं. ऐसा व्यक्ति ईश्वर के नज़दीक होने लगता है. वो चाहता है कि मैं चुप करके रहूँ , अधिक से अधिक मौन रहूँ ताकि मेरा ईश्वर से ध्यान नहीं टूटे. परन्तु हम हैं कि हर समय बोलते बहुत हैं .हमें अपनी इस वृत्ति को विवेक और वैराग से कम करना है.

सच्चा वैराग प्राप्त करने वाले भाग्यशाली महानुभाव की ऐसी गति को कहते हैं - ' हंस गति '. हंस कंकरों को छोड़ देता है, मोती चुन लेता है. दूध और पानी यदि मिला हुआ हो तो हंस दूध को पी लेता है, पानी को छोड़ देता है. परन्तु आज के संसार में भांति-भांति के विकारों में फंसा मनुष्य - जिसको कहा जाता है कि यह सर्वोत्तम जीव है, इसकी योनि सर्वश्रेष्ट्र है - उसमें ही सबसे अधिक अज्ञान और भ्रम भरा हुआ है. पशु भी जब खाने लगता है तो सूंघ लेता है परन्तु मनुष्य ही है जो ज़बान (ज़ायके) को देखता है कि किसमें ज़्यादा मज़ा आता है और वो भक्ष्य -अभक्ष्य खा लेता है - चाहे मिर्च-मसाले हों, मांस-मछली हो, या गंदगी से बनाया गया हो, सब कुछ खा जाता है. उसमें इन्द्रिय-तुष्टि के कारण विवेक तो रहता ही नहीं.

जिस मनुष्य में विवेक सध जाता है और विवेक से वैराग आ जाता है वह मनुष्य तो महान योगी बन जाता है. इतनी आयु हो गयी है पर हम अभी तक विवेक से कोसों दूर हैं. लोग समझते हैं कि साधना बड़ी सरल बात है : ऐसा है नहीं. विवेक के अभ्यास के साथ-साथ वैराग वृत्ति को अपनाने का साधन तो करना ही होगा, नहीं तो साधना में पुख्ताई नहीं आएगी.

विवेक का अभ्यास करते हुए हर समय ध्यानपूर्वक यही सोचें-समझें कि कौन सी बात मेरे हित में है, कौन से मेरे अहित में है ? हमें चाहिए कि हम वही बात करें, वही सोचें, वही खाना खाँये, वैसा ही व्यवहार करें, जिसके द्वारा हमारे अस्तित्व में सुधार हो, प्रगति हो. प्रगति का मतलब यह है कि हम आत्मा की तरफ, परमात्मा की तरफ आगे बढ़ें . धीरे-धीरे हम आत्मा का जो संबंध है उसको हम पकड़े रहें और आत्मा के विपरीत जो बात हो उसको छोड़ते चलें. इसी विवेक को साधने के लिए हमारी संस्कृति में व्रत आदि रखते हैं, मंदिरों-गुरुद्वारों आदि में जाते हैं .

एक बार विवेक सध गया तो हम वैराग के अधिकारी हो जायेंगे. वैराग का प्रथम चरण है अपने शरीर के साथ वैराग हो जाना. हमारे भीतर की जो जो आंतरिक शक्ति है, आंतरिक भावना है वही अपने शरीर से मुंह मोड़ ले. शरीर का भान ही न हो. इस वक्त हम सब शरीर से बंधे हुए हैं, कोई व्यक्ति ऐसा नहीं जो यह कह दे कि मैं शरीर से मुक्त हो गया हूँ, यह शरीर मेरा नहीं है, मैं शरीर नहीं हूँ. परन्तु शरीर के मोह से सम्बन्ध छोड़ने में बड़ा समय लगता है. अभी तो हम साधारण घंटा भर भी साधना में नहीं बैठ पाते - कभी इधर हिलते है , कभी उधर हिलते हैं. शरीर की थकान और पीड़ा हमें महसूस होती है. यदि इस शरीर से सम्बन्ध नहीं टूटा तो वैराग का क, ख, ग भी शुरू नहीं हुआ.

शरीर पर काबू पाने के बाद फिर प्राणों के साथ वैराग हो जाये. प्राण और मन में बड़ा गहरा सम्बन्ध है प्राणों की गति अधिक होगी तो मन अधिक चंचल रहेगा. प्राणों में स्थिरता आनी चाहिए. यदि प्राणों में अस्थिरता रहेगी तो कभी भी शांति नहीं आ सकती . यदि पहले प्राण स्थिर नहीं होगा तो हम जितनी मर्ज़ी कोशिश करें, भजन पढ़ लें, आँखें बंद कर लें, पूजा-पाठ कर लें, धार्मिक स्थानों में जाएँ, हमारा मन स्थिर नहीं होगा. लोग-बाग प्रणायाम करते हैं. परन्तु कई हठ-योगी लोग तो इसी में फंस जाते हैं.

हमें थोड़ा सूक्ष्म प्राणायाम अवश्य करना चाहिए. जैसा गुरु महाराज ने बताया है - हमें त्रिमुखा जाप कर लेना चाहिए. इसमें प्राणायाम अपने आप हो जाता है. इसे धीरे-धीरे, बड़े धीरे-धीरे. करना चाहिए. इस अभ्यास से प्राणों में स्थिरता आती है जिससे धीरे-धीरे मन में भी स्थिरता आ जाती है.

जब हमारे प्राण सध गए तो धीरे-धीरे मन भी सध जायेगा. जल्दी नहीं करनी चाहिए . यदि आप संसार में फंसे रहे, राग-द्वेष में, लोभ, मोह, काम, क्रोध में फंसे रहे, तो मन कभी भी शांत नहीं होगा. इनसे मुक्त होने का प्रयास तो करना ही होगा. आँख बंद करना ठीक है परन्तु प्रत्येक व्यक्ति को मनन -चिंतन, तथा समय-समय पर स्वनिरीक्षण अवश्य करना

चाहिए. केवल आँख बंद करके बैठने से कभी-कभी सूक्ष्म अहंकार आ जाता है कि मैं तो बड़ा अभ्यासी हो गया हूँ. परन्तु आप सच्चे अभ्यासी तभी बनेंगे जब आप काम, क्रोध, लोभ, मोह और बुद्धि के अहंकार,आदि से मुक्ति पा लेंगे.

चित्त पर भी अनेक जन्मों के संस्कार पड़े हैं. जब तक हम लगातार दो-चार जन्मों तक नहीं लगे रहेंगे तब तक प्रारब्ध कर्म और संस्कारों का जो भंडार है खत्म नहीं होगा. जब संस्कार खत्म हो जायेंगे तो निर्मल ज्ञान होगा, तब हम मोक्ष के अधिकारी हो सकेंगे अन्यथा बार-बार पुराने कर्म-संस्कारों के अनुसार हमारा जन्म-मरण होता रहेगा.

इसलिए साधक को प्रत्येक क्षण सावधान रहना चाहिए. रात को चौकीदार कहता है ' जागते रहो, जागते रहो '. जिज्ञासु-साधकों को भी प्रतिक्षण जागते रहना चाहिए. कहते हैं कि ऋषि लोग रात को जागते हैं. दिन में तो जागते ही रहते हैं. जागने का मतलब है प्रभु के चरणों से हमारा सिर नहीं उठे, हम मन -बुद्धि के चक्कर में न फंसे, अपने लक्ष्य के प्रति हम सो न जाएँ. सदैव सचेत रहें.

सारांश में तत्व की बात यही है कि मनुष्य अपने संस्कारों के कारण परमात्मा से पृथक होकर इस चोले में आया है. यानी वहआत्मा से, बुद्धि से, मन से होता हुआ इस शरीर के मोह आदि में फंस गया. अब साधना यही है कि शरीर से, प्राणों से ,मन से, बुद्धि से ,आनंद से - इन सब से मुक्त होकर अपनी आत्मा को परमात्मा की और मोड़ देना है, अर्थात भीतर में जो दीवारें अन्नमय आदि विविध कोषों की होती हैं, ज्यों ही वे हट जाती हैं, आत्मा परमात्मा में विलय हो जाती है. विलय किया नहीं जाता वो अपने आप हो जाता है.

यह साधना के चरण सभी पंथों में हैं. कोई धर्म या संप्रदाय इनके विपरीत नहीं कहता है. कहने का तरीक़ा भिन्न-भिन्न हो सकता है. उस भिन्नता के कारण हमें आपस में विरोध नहीं करना चाहिए ,कोई तर्क-वितर्क नहीं करना चाहिए. यदि किसी के संस्कार ऐसे हैं कि उसे कीर्तन करने में ही प्रभु की समीपता मिलती है, तो उसको कीर्तन करने दीजिये. चैतन्य महाप्रभु, नामदेव और गुरुनानकदेव आदि भक्तों ने कीर्तन के द्वारा ही तो प्रभु की प्राप्ति की थी. उनका कीर्तन आत्मिक कीर्तन था. कीर्तन किया और घंटों मौन में में खो जाते थे.

इसी तरह यदि कोई गुरु -पूजा करता है तो ठीक है. कोई मूर्ती -पूजा करता है तो गलत क्या है ? भगवान के निराकार स्वरुप को कोई व्यक्ति नहीं देख सकता है. उसका प्रतीक रूप-स्वरुप बनाकर हम उससे प्रेम करते हैं तो इसमें बुरी बात क्या है ? लक्ष्य सबका एक है. अतएव ,कभी भी किसी की आलोचना नहीं करना चाहिए. आलोचना करनी है तो अपनी त्रुटियों की, अपने दोषों की करें, दूसरों की कभी नहीं करें .

संक्षेप में, पुनः निवेदन कर दूँ कि सबके जीवन का, साधना का, अभ्यास का लक्ष्य है - अपनी आत्मा को परमात्मा में लय कर देना. बीच में जितनी भी रुकावटें हैं उनको विवेक, वैराग, ज्ञान, भक्ति, सेवा आदि सद्गुणों को अपनाकर अपने धाम यानि परमात्मा के चरणों में पहुंचा जाये. परमात्मा का धाम हमारे भीतर में भी है, बाहर भी है. उस ईश्वर को प्राप्त

करने के लाखों तरीके हैं, कोई एक विशेष तरीक़ा नहीं है. जो साधना अच्छी लगे,करो . उसी में क़दम बढ़ाते रहो, चलते रहो. लक्ष्य सबका ' वही ' एक है.

गुरुदेव सबके कल्याण करें .

राम सन्देश : अक्टूबर , १९९५ .

बिना भाव के भक्ति नहीं होती

" हरि का नाम सदा सुखदाई " - क्या अर्थ है इसका ? शब्द बड़े सरल हैं परन्तु अर्थ बहुत रहस्यमय है. नाम तो हम भी लेते हैं - ॐ राम, ॐ राम, राम -राम. परन्तु हमारी वह स्थिति नहीं होती जो स्थिति इस नाम को लेने के, इन शब्दों को सुनने के, परिणाम स्वरुप होनी चाहिए. हरि- जो हमारे दुखों को हरने वाला है, जो हमारे अज्ञान को हरने वाला है, जो हमारे अतीत के पापों को हरने वाला है, उसका नाम, वो जो अनामी है, वो नित्य सुख देने वाला है, कुशलता प्रदान करने वाला है. वो कौन सा नाम है ? उदाहरण भी दिया है कि हरि का नाम लेने से गणिका जैसी वैश्या का भी उध्दार हुआ. अजामिल उच्च कोटि का ब्राह्मण था, उसका पिता अपने राजा के दरबार में गुरु था. पिता की मृत्यु के पश्चात् अजामिल पिता के स्थान पर गुरुगद्दी पर विराजमान हुआ. परन्तु उसकी युवा अवस्था थी, मन और बुद्धि उसकेवश में नहीं थी. बुद्धिजीवी तो वह अवश्य था. पर उसे युवावस्था में घूमने -फिरने का शौक था. उसे राजा ने भी समझाया कि तुम अधिक शहर में मत जाया करो. राजा ने एक बाजार बताया और अजामिल से कहा कि तुम इस बाजार से मत गुज़रना. मनुष्य का स्वभाव है, वृत्ति है, कि उसे जिस बात के लिए उसे मना किया जाता है उसका मन उस और ही अधिक जाता है और वह उस बात को अवश्य करता है जिसके लिए उसे मना किया जाता है. राजा की बात न मानकर अजामिल को उत्सुकता हुई कि उसे इस बाजार में जाने के लिए क्यों मना किया गया है. वह जब पहले दिन उस बाजार में गया तो उसने देखा कि वहां वैश्याएं रहती है. उसके मन ने, बुद्धि ने उसे जागरूक भी किया कि इस बाजार में जाने की राजा ने रोक लगाई है तुम्हें इस वातावरण में नहीं जाना चाहिए. अंग्रेजी में एक कहाबत है कि " forbidden things are sweet " अर्थात जिन चीज़ों पर रोक लगाई जाती है, जिनके लिए मना किया जाता है, वे अधिक मीठी होती हैं. व्यक्ति उन चीज़ों में रस देखता है. उनके अंदर उसे मिठास अनुभव होती है. मन ने विरोध किया फिर भी वो उस बाजार में जाने लगा. दो-चार-पांच दिन में उसको एक जगह आकर्षण हुआ और वह वहां ऐसा फंस गया कि उसने अपना आध्यात्मिक जीवन नष्ट कर लिया.

राजा को पता लग गया, उसने ब्राह्मण से पूछा कि मेरे मना करने पर भी तुम वहां क्यों जाते हो ? ब्राह्मण ने सच-सच कह दिया कि क्या करूँ, मेरा मन नहीं मानता. राजा ने कहा - ठीक है तुम मेरे शहर से निकल जाओ और जिस स्त्री के साथ तुम्हारे सम्बन्ध हैं उसे भी साथ ले जाओ. उस स्त्री ने मेरे राज्य के एक विद्वान व्यक्ति को फांसा है, उसको भी निकालो. तो दोनों जंगल में जाकर बस गए, पति-पत्नी के तौर पर रहने लगे. संतान भी हुई, काफी वर्ष हो गए. ये भी मन का स्वभाव है कि वो अपने अतीत को नहीं भूलता . जहां बुरी बातों को नहीं भूलता, अच्छी बातों को भी कभी- कभी याद कर लेता है. ब्राह्मण बहुत उदास था कि कितने वर्ष हो गए, मैं कितनी गंदगी में रह रहा हूँ, मैने अपना जीवन ख़राब कर दिया . इतने में एक साधु-संत वहां आये, उन्होंने भिक्षा मांगी. अजामिल था तो ब्राह्मण ,अपने कर्मों के परिणामस्वरूप वह शूद्र बन गया था. बातचीत हुई, उसने सब कुछ उस महापुरुष को कह सुनाया. उस महापुरुष ने कहा कि हरि का नाम

अर्थात भगवान का नाम, नारायण, नारायण , नारायण लिया करो. अजामिल बोला कि ये तो मुझसे नहीं होता. ईश्वर की कृपा थी, उसका उद्धार करना था. महापुरुष ने कहा, कोई बात नहीं, तुम ईश्वर का नाम मत पुकारो. तुमने अपने शिशु का नाम नारायण रखा है, तुम अपने बच्चे को बुलाया करो. कुछ महापुरुष की कृपा थी, कुछ अजामिल के संस्कार खत्म हो गए थे, उसने कुछ ऐसे भाव से अपने बच्चे को बुलाया - नारायण, नारायण, कि उसका सारा शरीर रोमांचित हो उठा. अजामिल को उस अपने बच्चे में भी नारायण के दर्शन हुए और अपने भीतर में भी नारायण के दर्शन हुये . वह उस महापुरुष के चरणों में गिर गया. एक दफा हरि का नाम लेने से अजामिल जैसे इतने गिरे हुए शख्स का भी उद्धार हो गया. महापुरुष कहते हैं - " हरि का नाम सदा सुखदायी ." जिज्ञासु जब ईश्वर के साथ प्रेम का सम्बन्ध स्थापित कर लेता है तो यही नाम उसके लिए एक सीढ़ी बन जाता है. इसके परिणामस्वरूप मनुष्य में एक विशेष प्रकार का परिवर्तन आ जाता है. जो गुण नारायण के हैं, हरि के हैं, गुरु के हैं , धीरे-धीरे वो गुण सच्चे जिज्ञासु में आ जाते हैं .

तू-तू करता तू भया , मुझ में रही न हूँ

आपा परका मिट गया , जत देखां, तत तू

नाम परमात्मा का है - उसे हरि के नाम से पुकारिये, नारायण के नाम से पुकारिये, राम के नाम से पुकारिये - परन्तु नाम के साथ भाव होना चाहिए. महापुरुष कहते हैं कि बिना भाव के भक्ति नहीं होती. यहां भक्ति का अर्थ है कि जिज्ञासु का योग परमात्मा के साथ नहीं होता. हम सब भी जो नाम लेते हैं, भाव के साथ नहीं लेते. राम, राम, राम , राम, करते रहते हैं . ठीक है. लोग-बाग़ इसकी प्रतिक्रिया भी करते हैं. विश्वामित्र ने राम, राम कहा , बाद में मरा, मरा कहने लगे. परन्तु उनके मन जो भाव था वह यह था कि उन्हें परमात्मा के दर्शन करने है . वह मरा का ही यह अर्थ समझते रहे कि राम सब जगह रमते हैं, सर्वव्यापक हैं. विश्वामित्र ने भाव को अपनाया था . राम की जगह मरा, मरा कहा तो कोई बात नहीं. परमपिता समझते हैं कि सच्चे जिज्ञासु के ह्रदय में क्या भावना है. वो हमारे आचार-विचार, रहनी-सहनी को देखते हैं. इसीलिए कहते हैं - " बिन गुण कीते भक्ति न होई." यानी जब तक भावना नहीं आएगी, परमात्मा के गुण नहीं आएंगे, हमारी भक्ति में सफलता नहीं मिलेगी. नाम का अर्थ केवल राम-राम कहना नहीं ह . नाम के अर्थ है , " तू, तू करता , तू भया , मुझ में रही न हूँ ." नाम लेता हुए मैं जिसका नाम ले रहा हूँ , मैं वैसा ही हो जाऊं . मेरे भीतर में ये जो अहंकार हैं कि मैं कुछ हूँ, मैं ईश्वर से पृथक हूँ, मैं आत्मा नहीं हूँ, मैं आत्मा से पृथक हूँ - ये सब अहंकार खत्म हो जाने चाहिए. जब तक अहंकार की यह दीवार है, तब तक न आत्मा की अनुभूति हो सकती है और न परमात्मा के दर्शन हो सकते हैं. एक क्षण के लिए अजामिल ने महापुरुष का संग किया और नारायण - नारायण कहा, उन्हें पीछे से शक्ति मिली. अजामिल के अंदर से यानी ह्रदय की गहराई से शब्द निकला - नारायण, उसकी आँखें मुद गयीं, शरीर रोमांचित हो उठा और प्रभु के दर्शन हो उठे. जो अहंकार था,बुरी तरफ उसकी जो आसक्ति थी वो जाती रही. निर्मलता आ गयी, नामी का रूप आ गया, आत्मा का रूप आ गया, परमात्मा का रूप आ गया - अजामिल के संस्कार समाप्त हो गए .

हम जब ईश्वर के गुणों को याद करते हैं तो हमें ईश्वर की समीपता प्राप्त होती है. साधना करते-करते हम सहज बोल उठते है - "अहम ब्रह्मास्मि " मैं तो वही हूँ जो ब्रह्म है, मैं ये शरीर नहीं, मैं ये प्राण नहीं, मैं मन नहीं, बुद्धि नहीं, आनंद नहीं - आत्मा परमात्मा एक है. वो कहता नहीं, अनुभव करता है. वाक तो अवाक हो जाता है, भीतर का मन भी शांत हो जाता है . उस अवाक स्थिति में वो अपने या परमात्मा के स्वरुप का अनुभव करता है. इसको हम दर्शन भी कहते हैं, तदरूपता हो जाती है. तदरूपता कितनी होती है यह व्यक्ति की निर्मलता पर, उसके अहम की निर्मलता पर निर्भर करती है. किसी को दर्शन होते हैं,अनुभूति होती है, क्षण-भंगुर होती है, एक सेकेंड के लिए होती है, किसी को दस सेकेंड के लिए होती है. क्योकि अनुभूति की यह शक्ति इतनी इतनी महान है कि इसको सहन करना अति कठिन है. जो व्यक्ति गरम चाय नहीं पीता यदि आप उसको एकदम गरम चाय पिलायेंगे तो उसकी जुबान जल जाएगी, परन्तु जिसकी आदत पड़ी हुई है, जिसका स्वभाव है गरम चाय पीने का, उसको कोई कष्ट नहीं होगा. धीरे-धीरे चलें, इस रास्ते पर जल्दी नहीं करना चाहिए. पूज्य गुरु महाराज कहा करते थे, जल्दवाजी नहीं करना चाहिए. जो जल्दी करेगा, कुए में गिरेगा, वो अहंकारी हो जायेगा अहंकार आया तो अहंकार की जो संतान हैं, सारे अवगुण उसके भीतर में आ जायेंगे. हम रोज़ नाम लेते हैं परन्तु हमारे भीतर में कोई फर्क नहीं आता, हमारे अंदर सारे अवगुण अभी तक हैं. हम शरीर के साथ इतने चिपके हुए हैं कि हमें तनिक सी भी तकलीफ होती है, हम घबरा जाते हैं. हम मन के साथ चिपके हुए हैं, बुद्धि के साथ और सबसे अधिक अहंकार के साथ चिपके हुए हैं, ये सत्य है. आदर्श हमारा ऊंचा होना चाहिए, परन्तु उस ऊंचे आदर्श की प्राप्ति के लिए हमें हमेशा साधना भी उसी के अनुकूल करनी चाहिए. हमारी रहनी-सहनी, व्यवहार आदि साधना के अनुरूप नहीं है. परिवारों में झगडे , तनाव - सब कुछ है. तब भला ईश्वर कहाँ आएगा ? ये तो पिछले कर्म कुछ अच्छे रहे होंगे कि अजामिल का उद्धार हो गया, गणिका का उद्धार हो गया.

निवेदन यह है कि हमें गंभीर होना चाहिए. नाम क्या है ? नामी कौन है ? हम किसका नाम ले रहे हैं ? हमें इसके प्रति गंभीर होना चाहिए. ईश्वर प्राप्ति के लिए योग्य साधना करनी चाहिए. अपनी स्थिति के अनुकूल साधना करनी चाहिए. सर्वश्रेष्ठ बात तो यह है कि हम किसी प्रकार अपने अहंकार का त्याग करें. हम सब अहंकारी हैं. किसी को अपने शरीर का गुमान है, किसी को अपने मन की चालाकी पर अहंकार है, किसी को बुद्धि का, किसी को पैसे का, किसी को अपने सद्गुणों का अहंकार है. आपको कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिलेगा जो अहंकार शून्य हो, जो सच्चे अर्थों में दीनता का प्रतीक हो. हमें योग्य बनना है. केवल राम-राम कहने से कुछ नहीं होगा. पाँच शरीर हैं - शरीर, प्राण, मन, बुध्दि, आनंद. इन पांचों शरीरों को संवेदनशील बनाना होगा. नामी की कृपा तो सब पर हो रही है. नामी की अमृतधार तो उसके चरण कमलों से सब पर पड़ रही है, पर उस अमृत को, उस नाम को ग्रहण करने के लिए हमें योग्य-पात्र बनना है . इसीलिए इसको साधना कहते हैं. हमें अपने शरीर को भी साधना है , प्राणों को भी साधना है, मन को भी, बुद्धि को भी, आनंद को भी ऐसा बनाना है जैसा हरि का रूप है. इससे कम नहीं. यदि इससे कम स्थिति होगी तो हरि नहीं मिलेंगे. केवल जल ही

जल में मिल सकता है. जल में पत्थर मिलने में बहुत देर लगेगी, लाखों वर्ष लग सकते हैं. हमारी स्थिति एक पत्थर की तरह है, दांतो की तरह है :

"ज्यों जल में , जल आये खटाना

त्यों ज्योति संग, जोत समाना

मिट गए गमन , पाए बिसराम ,

नानक प्रभु के पूरण काम "

जल बनना है, ईश्वर को मिलने के लिए हमें ईश्वर बनना है, इससे कम नहीं. हम जब तक ऐसा नहीं करेंगे, जन्म-मरण के चक्कर में पड़े रहेंगे और हमें सच्ची शांति जिसके हम अभिलाषी हैं, खोजी हैं, वो नहीं मिलेगी. तीसरे गुरु, श्री गुरु अमरदास जी ने बृद्ध अवस्था में गुरु धारण किया और पंद्रह साल के करीब उन्होंने साधना की. बहुत बृद्ध आयु में वह गुरु बने. जब जाकर उन पर गुरु की कृपा हुई. वह रात को अपने बाल दीवार के साथ खूँटी से बाँध देते थे, ताकि नींद न आये. ७० साल की आयु के बाद उन्होंने गुरु किया और जब तकरीबन ८५ साल की आयु में वह गुरु हो गए तो आपने इतनी मधुर और व्यावहारिक वाणी उच्चारण की . कहते हैं :

" आनंद भया मेरी माये , सतगुरु मैं पाया "

ये आनंद क्या है ? पूरी-कचौड़ी खायी, उसका रसास्वादन आया, वो आनंद नहीं आया. आनंद आया कि सतगुरु की प्राप्ति हुई, ८५ साल की आयु में, लगातार साधना के पश्चात् . तो क्या हुआ ? आनंद मिला, आत्मा का आनंद मिला . " सतगुरु तो मिलिया, सहज सेती मन बजिया बँधाइयाँ " . यानि सरलता से सतगुरु मिल गया . इतने साल कोशिश करता है, पहले तो ज्ञान ही नहीं था कि गुरु कैसा होता है. जब शुरू किया तो गुरु की कृपा से सच्चा नाम मिल गया, तो वर्णन करते हैं - " राग रतन प्रवाह भरिया " . सारा शरीर रोमांचित हो उठा, अंतर बाहर एक हो गया. उनको तो प्राप्ति हुई ही पर औरों को भी प्रेरणा देते हैं :

" संत तू गावो हरि के नाम , मन में बसाओ "

उसी हरि का,अभी हरि का शब्द सुनते रहे थे, उसका नाम हृदय में बसाओ, और दूसरे अर्थ में रोम-रोम में हरि रूप हो जाओ.

" कह नानक आनन्द होया, सतगुरु मैं पाया "

जिसको सतगुरु की,सच्चे सतगुरु की, प्राप्ति हो जाती है उसको यदि आत्मिक आनन्द की अनुभूति नहीं होती तो या तो शिष्य में दोष है या कथित गुरु में दोष है. रोग कहते हैं अज्ञान को, राग कहते हैं दूर करने वाले को. इसीलिए सभी महापुरुष कहते हैं कि गुरु सोच-समझकर करना चाहिए. जब तक आपको संकेत न मिले कि वो शख्स मेरा अज्ञान दूर कर देगा, अर्थात मेरी अनात्मिक्ता को दूर कर देगा, तब तक किसी के चरणों में समर्पण नहीं करना चाहिए . जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए. कहने का अर्थ यह है कि हम हरि के समान हो जाएँ. यह कठिन है. २४ घंटे की साधना है. मैं बार-बार कहा करता हूँ कि हमारी जो दिनचर्या है उसे ही हमें साधना रूप बनाना चाहिए या साधना के अनुरूप बनाना चाहिए. हम सारा दिन तो बुरे कर्म करेंगे, बुरे विचार उठाएंगे, प्रातः -सांय यदि बैठे तो दो-चार मिनिट के लिए , मन नहीं लगा, रोटी बनानी है, पति को दफ्तर जाना है, तो ये साधना नहीं है. हमें अपने-आपको संवेदनशील बनाना है ताकि गुरु और ईश्वर की कृपा जो आप पर बरस रही है, उसे आप ग्रहण कर सकें, जज्ब कर सकें और वैसा बन सकें. .

" झिम झिम बरसे अमृत धारा "

ईश्वर की कृपा, आत्मा की वृष्टि तो सब पर एक जैसी हो रही है, मूसलाधार बारिश की तरह हो रही है. इसीलिए परमात्मा को दयानिधि कहते हैं. दया के सागर हैं, वो संकोच नहीं करते है. हमने अहंकार की दीवार खींची है, उसी के कारण हम अपना समय व्यर्थ गवां रहे हैं. हम जिसका नाम ले रहे है, हमें समझना चाहिए कि उसका रूप कैसा है, उसका नाम कैसा है, उसके गुण कैसे हैं ? हमारे जीवन का ध्येय है कि हमको वैसा बनना है जैसे हमारे इष्टदेव हैं, परमात्मा हैं . यह २४ घंटे का यज्ञ है. इसमें त्याग की आवश्यकता है जो हम नहीं कर पाते है. आंशिक रूप में कुछ न कुछ फल तो प्रत्येक कर्म का होता है, उतना फल तो मिलेगा . परन्तु जैसा फल आप चाहते हैं या जैसा महापुरुष कहते हैं या जैसा शास्त्रों में लिखा है , वैसा फल नहीं मिलेगा. हमें भीलनी जैसी तपस्या करनी होगी, द्रोपदी जैसी पुकार जब हमारे ह्रदय से निकलेगी, तब भगवान प्रकट होंगे. वो भी देख रहे हैं हमारा यह तमाशा. ईश्वर हमारा तमाशा देखता है. हम तो दिन-ब-दिन भटकते जा रहे हैं. त्याग और वैराग के या तो हमें अर्थ नहीं समझ आते, समझ आते हैं तो हम सोये हुए हैं उन अर्थों के प्रति. बिना त्याग किये और बिना वैराग के साधना में सफलता मिल जाये, यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है . इसीलिए आपसे करबद्ध प्रार्थना है, बार-बार एक ही शब्द कहता हूँ, गंभीरता अपनाइये . अभी एक शब्द, एक अक्षर गंभीरता से पढ़ लीजिये, उस पर मनन कीजिये, उस पर निध्यासन कीजिये और वैसा बन जाइये. आप सैकड़ों शास्त्र पढ़ लीजिये, वो एक तरफ और एक शब्द की साधना वो एक तरफ. वो कहीं अधिक है. एक शब्द , केवल एक शब्द , मनन करना चाहिए, मनन करना चाहिए. ॐ .

राम सन्देश : सितम्बर -अक्टूबर ,२००८

भक्ति के अनेक रूप

दुनियाँ में अनेक धर्म और मज़हब हैं और उनमें पूजा आदि के जो अलग - अलग तरीक़े हैं उन सबका मतलब यही है कि किसी तरह ईश्वर के चरणों में प्रेम हो जाय . बिना प्रेम के ईश्वर प्राप्ती नहीं हो सकती . ईश्वरीय प्रेम का बयान ज़बान से नहीं किया जा सकता . ख़्यालों में आदमी कितना ही ऊँचा उठ जाय पर उस मोहब्बत का जो ईश्वर के लिए होतीं है , वार पार नहीं पा सकता -- उसका कोई अन्त नहीं है --उसकी पूर्णता कहाँ है , इसका कोई पता नहीं . लेकिन हिन्दू धर्म में ईश्वर -प्रेमीयों ने उसे बयान करने की कोशिश की है और उसके लिये संसारी प्रेम की उपमा का सहारा लिया है . जो चीज़ें ईश्वरीय हैं उनको मनुष्य ने अपने तौर पर समझने की कोशिश की है . इस ईश्वर प्रेम को उन्होंने ' भक्ति ' नाम दिया है .

सबसे नीचे दर्जे की भक्ति को ' शाँत' भाव कहा गया है . भक्त ईश्वर की उपासना तो करता है लेकिन प्रेम की आग उसके हृदय में नहीं धधकती , ईश्वर के लिये पागलपन और उन्मत्ता उसके मन में नहीं आती . इस तरह का प्रेम घटिया है , ठंडा है , धीमा है , उसमें गरमी और जोश नहीं है . वह शाँत है . रस्मी तौर पर ख़ाली पूजा कर लेना , फूल चढ़ा देना , दर्शन कर आना , पाठ कर लेना या ऐसी ही और ऊपरी बातों से ज़रूर यह शाँत भाव ऊँचा है , लेकिन तेज़ी न होने से इस निचले दर्ज़े के प्रेम को शाँत भाव कहा गया है . शाँत भक्त सीधा और चुपचाप रहने वाला होता है .

इससे कुछ ऊँचा और अगला दर्ज़ा प्रेम का 'दास्य ' भाव कहलाता है . यह भाव जब आता है तब भक्त अपने को सेवक और ईश्वर को अपना मालिक समझता है . उसके कर्म ईश्वर के प्रति ऐसे ही होते हैं जैसे एक वफ़ादार नौकर अपने मालिक के लिये करता है . उसकी सारी ज़िन्दगी अपने मालिक के लिये होती है . मगर यह भी घटिया भक्ति है , जैसा काम वैसा दाम . नौकर की पहुँच मालिक के घर के अन्दर तक है लेकिन वह उससे मिलकर एक नहीँ हो सकता . दो का ख़्याल हमेशा रहेगा . " तू मालिक है , मैं तेरा दास हूँ . " आधीनता तो पूर्ण होती है -- जैसा देगा वैसा खाऊँगा , जैसा देगा वैसा पहनूँगा , जिस नाम से पुकारेगा वही मेरा नाम है -- ऐसा भाव दास का मालिक की तरफ़ होता है . इससे मालिक खुश होता है और क़भी - कभी खुश होकर अपने नज़दीक बिठा लेता है . इससे ज़्यादा और कुछ नहीं . नज़दीक़ी हाँसिल हो गई मगर मिलकर एक नहीं हुए . नौकर का मालिक के ऊपर कोई ज़ोर नहीं होता . हनुमान जी का दास भाव था .

तीसरा दर्जा प्रेम का ' सख्य ' भाव कहलाता है . सखा मायने दोस्त . "Thou art my beloved friend" सख्य भाव में भक्त भगवान को अपने बराबर का , हमदर्द , हमराज़ और हमनशीं समझता है . ग़रीबी , अमीरी का कोई ख़्याल नहीँ . जैसे कृष्ण और सुदामा का भाव . भक्त अपने ईश्वर को जब सख्य भाव से पूजता है तब उसे अपने नज़दीक समझता है . अपने जीवन की अच्छी -बुरी , दुःख - सुःख की , पोशीदा से पोशीदा सब भेद खुल कर कह देता है और उससे पूरी उम्मीद ही नहीं बल्कि ज़ोर के साथ उसका भरोसा करता है कि वह उसकी हिफाज़त करेगा , उसकी हमेशा मदद करेगा . वह ईश्वर को ऐसा समझता है जैसे बचपन के खेलने वाले साथी -- ग्वाले और कृष्ण ..

जो ऊपर चढ़ता है वह नीचे गिरता है , जो नीचे गिरता है , वह ऊपर भी चढ़ता है -- यह उसूल है . जब इन्सानी आत्मा ऊपर चढ़ सकती है तो वह नीचे भी गिर सकती है . इसलिए आदमी को चाहिये कि अपनी ख़्वाहिशात को धर्म का सहारा लेकर पूरी करे लेकिन उसमें पूँजी , जो उसके पास निश्चित मात्रा में हैं , कम से कम लगाए और जो पूँजी छिपी हुई है , यानी जो शक्ति आत्मा की छिपी हुई है , उसको अभ्यास करके हासिल करे और इस पूँजी की मदद से , यानी अभ्यास और सतसंग करके , ऊपर की चढ़ाई करे ताकि उससे नज़दीक़ी हासिल हो सके . जब तक ईश्वरीय गुण हासिल नहीं होते , उसको क़ुरबत (समीप्य) नसीब नहीं होगा और जब तक क़ुरबत नसीब नहीं होती , आत्मा को चैन नहीं मिल सकता . इसलिए दुनिया के सब काम करते हुए , किसी न किसी तरीके से (जिसको मन पसन्द करता हो) उस ईश्वर को याद बराबर करते रहना चाहिये . यही सिर्फ एक ज़रिया है जिससे जीव हमेशा - हमेशा का सच्चा और अपार सुःख हासिल कर सकता हैं जो हमारा असली परमार्थ है . यहीं उस परम पिता परमात्मा के दुनियाँ की रचना करने का मतलब है .

ईश्वर सबको ज्ञान दें

. ☆☆☆☆☆☆☆☆☆☆

मनुष्य जीवन का सर्वोत्तम उपहार : विवेक बुद्धि

यह तो एक सर्वमान्य साधारण सत्य है कि मनुष्य ही प्राणी मात्र में ऐसा भाग्यशाली जीव है जिसे विवेक-बुद्धि जैसी साधारण और उपयोगी निधि प्रभु की कृपा से प्राप्त हुई है और यह निधि मनुष्य के सर्वतोमुखी विकास के लिए हरदम उपलब्ध है. इसी शक्तिशाली माध्यम से हमें इस प्रश्न का हल खोजना है कि हम सत्संग में क्यों जाते हैं ? यहाँ पर या अन्य जगह पर क्यों जाते हैं ? हम इसलिए जाते हैं ताकि पहले तो हमारे अन्दर शांति हो और हमारे व्यवहार से औरों को भी शांति मिले. यदि सत्संग में आकर भी हमारे पारिवारिक जीवन में उत्तेजना रहती है या हम अपने व्यक्तिगत जीवन में जलते- भुनते रहते हैं और हम समाज से भी दुर्व्यवहार करते हैं तो इससे बेहतर है की हम को सत्संग छोड़ देना चाहिए और कोई अन्य रास्ता बड़ी गंभीरता से ढूंढना चाहिए.

हर व्यक्ति को अपनी विवेक बुद्धि से यह समझ लेना चाहिए कि उसका यह शरीर हमेशा रहने वाला नहीं है. इसी तरह जो अन्य सांसारिक वस्तुएं हैं वे भी हमेशा रहने वाली नहीं हैं. इसी तरह ये जो सांसारिक सम्बन्ध हैं वे भी थोड़े समय के लिए हैं, इन्हें हमेशा नहीं रहना है. इसका मतलब यह नहीं कि हम घर-बार छोड़ कर जंगलों में चले जाएं .संत मत में घर छोड़ने के लिए कोई स्थान नहीं है. संतमत में सिखमत, राधास्वामी मत, जैसे अन्य जितने पंथ या रास्तें हैं सब आ जाते हैं, इनमें कोई ख़ास अन्तर नहीं है . संतमत आदिकाल से चला आ रहा है . हम सब भाइयों को सचेत रहना चाहिए कि ये जगत जो दीखता है, भासता है , वो वैसा नहीं है. हमारा जो अस्तित्व है वो भी परिवर्तनशील है, हम सभी इस जगत में थोड़े दिनों के मेहमान हैं .

इसलिए इस तथ्य की वास्तविकता को गंभीरता से सोच-समझकर , हम वो कर्म करें जिनसे हमें भीतर में सुख मिले, शांति मिले, आनंद मिले एवं हमारे व्यवहार से किसी को भी दुःख न पहुँचे, कष्ट न मिले. हम जब तक जीते हैं, थोड़े-बहुत समय के लिए जीते हैं पर कुछ लोग खुद भी दुखी होते हैं और दूसरों को भी, संसार को भी दुखी बनाते हैं. ये कैसा जीवन है ? इससे तो पंछी हमसे अच्छे हैं, हवा में उड़ते हैं, खेलते हैं, उनको कोई चिंता नहीं. वो किसी को कोई दुःख नहीं पहुंचाते हैं. हर मनुष्य को रोज़ स्वनिरीक्षण करना चाहिए कि क्या मेरी वाणी से किसी को दुःख तो नहीं पहुंचा ? क्या मैं अकारण ही गुस्से में तो नहीं आ गया ? क्या परिवार के प्रति, समाज के प्रति, ईश्वर के प्रति मेरा जो दायित्व है, मेरे लिए जो सेवा है, उसे मैं पूरा कर रहा हूँ ? यह हम सब के लिए चुनौती है पर हम सब सोए हुए हैं. सत्संग में होते हुए भी एक दूसरे की ग़लती या ग़लतफ़हमी को क्षमा न करना - हमारा ऐसा व्यवहार सत्संगियों जैसा नहीं है.

यह एक प्रकार की चेतावनी है जिसे हम सबको समझ लेना चाहिए कि ये जो शरीर है , आज है पता नहीं कल दूसरे क्षण में रहेगा या नहीं रहेगा. तो सावधान रहना चाहिए . सावधान रहने का मतलब है कि हमें ईश्वर के प्रति सतर्क रहना चाहिए. ईश्वर के प्रति वो ही सतर्क रह सकता है जिसने अपने आप को शुद्ध, निर्मल और योग्य बना लिया हो. हम

दूसरे को बुरा मनायें, दूसरे की निंदा सुनें और बुराई आँखों से देखें और उपासना के लिए घंटे दो घंटे बैठ जाएँ - ऐसी साधना कोई मायने नहीं रखती. प्रत्येक साधक को एक आदर्श व्यक्ति बनना है. व्यक्ति को पहला जो योगदान देना होगा उसको 'अपने-आपे' का देना होगा अर्थात उसे अपना आचरण सुधार कर अपने आप को बनाना होगा. तत्पश्चात उसे अपने परिवार में पूरा योगदान देना है और तब समाज की सेवा में योगदान देना है .

सभी जानते हैं कि हमको मरना ही, इस शरीर को छोड़ना है परन्तु सब अपने कर्तव्य के प्रति तथा इस आशय के प्रति सोये हुए हैं . यदि कोई जान ले कि कुछ घंटे बाद उसकी मृत्यु होनी है तो कोई पाप नहीं करेगा, कोई बुरी बात नहीं करेगा, कोई कठोर शब्द इस्तेमाल नहीं करेगा, कोई अहंकार प्रदर्शित नहीं करेगा. दीनता का नाम तो संसार में, माफ़ कीजिये , आज सत्संग में भी, ख़त्म सा होता जा रहा है. यदि हमें ऐसे वातावरण से, ऐसे समाज या घर से भागना नहीं है तो हम सबको गीता के अनुसार विवेक और वैराग्य वृत्ति को अपनाना होगा. परमात्मा ने बुद्धि दी है, विवेक दिया है जिससे निर्णय करें कि कौन सी बात मेरे हक़ में है, संसार के हक़ में है जो मुझे करनी चाहिए और कौन से बात मेरे अहित में या मेरे परिवार और समाज के अहित में है जिसको मुझे छोड़ना चाहिए.

जब विवेक परिपक्व हो जाता है तो वैराग अपने आप उत्पन्न हो जाता है. भगवान् कृष्ण के उपदेश की बात समझने आनी लगती है कि वैराग क्या वस्तु है. वैराग का मतलब यही है कि इस शरीर को तो मरना है ही तो इससे राग क्यों रखें ? इससे ऊपर उठना है यानी संसार की जो इतनी सारी वस्तुएं हैं ये हमारे साथ चलने वाली नहीं हैं, इनसे ज़्यादा मोह नहीं करना चाहिए. वैराग होना चाहिए पर वैराग के लिए करें क्या ? इसके लिए परमात्मा के चरणों में अनुराग पुष्ट करें. विवेक और वैराग सूखा होगा तो मन को दुःख होगा, उसके साथ अनुराग होगा तो मन उधर लगेगा. जो व्यक्ति ईश्वर का ध्यान सच्चे हृदय से करता है उससे कभी बुराई हो ही नहीं सकती. उसकी ज़बान से कटु शब्द कभी निकल ही नहीं सकते.

हम ध्यान से साधना नहीं करते, समझ से साधना नहीं करते. अपना दैनिक व्यवहार सोच समझ कर नहीं करते. पूज्य गुरु महाराज बार-बार यह बतला रहे हैं कि पहले तो यह समझो कि यह शरीर नश्वर है और दूसरा यह कि विवेक और वैराग को जाग्रत करने के लिए परमात्मा के चरणों में हमारा अनुराग निरंतर बना रहे. जिसका परमात्मा के चरणों में अनुराग जलधारा के प्रवाह की तरह निरंतर बना रहता है उसको स्वयं को तो आनंद मिलेगा ही, वो संसार को भी सुख पहुंचाएगा. वह जानबूझकर कोशिश करे या न करे, वह जहाँ भी बैठेगा सुख और शांति का संचार-प्रसार करेगा, जैसे कि चंदन की लकड़ी जहां भी पड़ी होगी, वहीं से उसकी सुगंध चारों और फैलेगी. जो ठीक ढंग से प्रभु जी के चरणों में अनुराग-साधन करता है उसे तो कुछ बोलने की भी आवश्यकता नहीं होती .

गुरु महाराज के कहने का मतलब यही है कि हमारी वैराग वृत्ति निरन्तर बढ़ती रहे. हमें कभी न कभी तो जाना ही है. अतएव समय का सदुपयोग करते हुए ईश्वर के चरणों में हर वक्त लिपटे रहें. ईश्वर के चरणों में लिपटने का मतलब है

कि हम ईश्वर के गुणों को अपनाएं. यदि हमने पूजा-पाठ करते हुए ईश्वर का एक भी गुण नहीं अपनाया तो - आप मुझे क्षमा करेंगे - कि हमने कुछ नहीं किया. प्रत्येक जीव परमात्मा का ही अंश है. परमात्मा सर्वव्यापक होता हुआ आपके भीतर में भी है. आप वही हैं जो परमात्मा है. परन्तु अज्ञान-वश, मोह-वश, हम अपने आपको समझते हैं कि हम ये शरीर हैं. नहीं, हम भी वही हैं जो परमात्मा है. हम ज्योति स्वरुप हैं, अपने आपको पहिचानें. शंकराचार्य जी कहते हैं - 'तत्वमसि' (तू तो वही है). वो गलत नहीं कह रहे हैं. परन्तु मनुष्य जब से पैदा हुआ है उसमें अज्ञान आ गया है, वह अपने आपको भूल गया है.

इस संसार में रहकर हम जितनी भी साधना करते हैं वो इसलिए करते हैं कि हम अपने आपको पहिचानें. पहचानना यह होगा कि हम हैं तो वही पर भूल रहे हैं, हमारी आँखें बंद हैं. जब वास्तव में मैं वही हूँ जो परमात्मा है तो मुझसे वही काम होने चाहिए जो काम परमात्मा से हो रहे हैं .

परमात्मा का एक मुख्य गुण है - क्षमा. क्या हमसे स्वतः क्षमा होती है ? क्या हमें उत्तेजना आ जाती है ? परमात्मा का एक और विशेष गुण है - ' प्रेम '. हज़रत ईसा भी कहते हैं ' love thy neighbor as thyself ' यानी तुम्हारे अंदर आत्मा है तो दूसरे में भी उसी परमात्मा के दर्शन करो और उसके साथ इस तरह व्यवहार करो जैसे परमात्मा के साथ व्यवहार कर रहे हो. हम तो अपने मित्रों के साथ, सम्बन्धियों के साथ भी वैसा व्यवहार नहीं करते हैं. इसी तरह एक गुण है - कर्म-व्यवहार का यानि कर्म किस प्रकार का हो. परमात्मा को जो कर्म-व्यवहार अति प्रिय है वह है - सबकी निस्वार्थ सेवा या निष्काम सेवा .

बाइबिल के अनुसार हज़रत ईसा ने भी कहा है - सबकी सेवा करो. हमारी गीता में भी यही बताया गया है कि जो भी कर्म करो दूसरे की सेवा में करो, दूसरे की प्रसन्नता के लिए करो. अपनी प्रसन्नता को एक तरफ रखो. परमात्मा का जो चिरन्तन सर्वव्यापी स्वरुप है वो कहीं दूर नहीं है - जहां देखो वहीं है , यहां भी है. थोड़ा सा शांत मौन में बैठ जाइये. आपको अनुभव हो सकता है कि परमात्मा यहीं है - हमारे भीतर में भी और बाहर भी.

यह कोई अन्धविश्वास नहीं है. हमारे यहां तो यही सहज साधन है. हम भजन आदि जितने भी पढ़ते हैं, ये मन की चंचलता को दूर करने के लिए, एकाग्रता लाने के लिए होते हैं, अन्यथा हमारे यहां का मुख्य साधन तो यही है कि हम बिलकुल शांत बैठ जाएँ. आपने कहीं भी किसी महापुरुष की फोटो में देखा होगा कि कहीं चंचलता नहीं दिखाई देती अपितु उनकी मुद्रा सहज समाधि की होती है. केवल शांत भाव भाव से बैठे हैं - बैठने का मतलब है कि वो आत्मस्थित हैं - आत्मा और परमात्मा एक हैं. ऐसी मगन अवस्था में, पूज्य गुरु महाराज के शब्दों में, " कोई आशा नहीं है. न कोई भजन सुनने की आशा है, न कोई शब्द सुनने की या कोई दृश्य देखने की, यहां तक कि आनंद की भी आशा नहीं है." इसलिए कोई आशा लेकर न बैठें . यदि आशा लेकर बैठे तो मन तो क्रियाशील रहेगा ही. मन को तो क्रियाशून्य होकर बैठना है . न शरीर में कोई क्रिया हो, न मन में कोई क्रिया हो , न बुद्धि में कोई तर्क -वितर्क - यह है मौन का साधन

और यह सहज स्वभाव है. जब मौन का साधन परिपक्व हो जाता है तो आप में और ईश्वर में कोई अन्तर नहीं रह जाता. सभी महापुरुषों ने स्थिरता को महत्त्व दिया है.

मैने एक महापुरुष की वाणी टेप पर सुनी जिसमें वह बता रहे थे कि मौन में क्या होता है ? उन्होंने एक बड़े सुन्दर उर्दू के शब्द का प्रयोग किया - महक , कि जब महापुरुष ऐसी स्थिति में बैठते हैं तो उनके शरीर से ' महक ' (सुगन्धि) निकलती है . वो ही नाम है. लोग - बाग नाम की परिभाषा पूंछते हैं, व्याख्या पूंछते हैं कि नाम क्या है ? परमात्मा को ही ' नाम ' कहते हैं. नाम, परमात्मा का ही रूप है. परमात्मा तो अरूपा है, सब रूपों में रहता हुआ भी वो अरूपा है. उसकी निशानी यही है कि जितना हम उसके समीप होंगे उतनी ही हमें उनसे प्रसादी मिलती है. हमारी सनातन संस्कृति में जो शब्द इस्तेमाल किया गया है , जो गुरुवाणी में भी इस्तेमाल किया गया है, वो है ' प्रसाद ' - 'एक ओंकार' ' ' ओम' या 'ओंकार '. सभी शास्त्रों में है . गुरु नानक ने साथ में ' एक ' लगा दिया है , यानि वो जो ओंकार है वह एक है, और उसकी निशानी है - प्रसादी, grace , महक , सुगन्धि .

लोग-बाग यह ख्याल करते हैं कि प्रभु किसी अवतार आदि के पुराने रूप में आकर मुझे दर्शन देंगे. यह भी ठीक है, वो लोग भी अच्छे हैं, वो आपको प्रेरणा देते हैं आगे बढ़ने की. परन्तु उस परमेश्वर के वो अंतिम दर्शन नहीं हैं . गुरु महाराज के शब्दों में (उनके लिखे हुए नोट हैं मेरे पास, वही मैं दोहरा हूँ) . वे लोग भी ठीक हैं, जितने और रास्ते हैं वो ग़लत नहीं हैं, परन्तु वो मन के साधन हैं . जब मन रहेगा ही नहीं तो साधन कहाँ होगा ? साधन करने का विचार कहाँ से उत्पन्न होगा, ज़रूरत काहे की होगी ? हाँ, जब तक मन है तब तक किसी न किसी को आधार बनाकर चलना चाहिए नहीं तो यह मन और बिगड़ जायेगा.

पूज्य गुरु महाराज के ही उपदेश हैं कि जब मन शांत हो जाता है तो फिर क्या पकड़ना है ? न प्रकाश पकड़ना है, न शब्द पकड़ना - यहां तक कि गुरु को भी नहीं पकड़ना है. मगर जब तक मन मौजूद है, प्रकाश को, शब्द को उन्होंने बहुत महत्व दिया है. परन्तु वह भी अंतिम साधन नहीं है हमारा . हमारा अंतिम साधन यह है कि साधना करने वाला रहे ही नहीं . केवल परमात्मा ही परमात्मा हो. हम तो अपने आप को खत्म कर देते हैं. फिर ईश्वर की लीला है. उसे जिससे काम लेना होता है उसको मनुष्य चोला धारण करने की आज्ञा दे देते हैं. जैसे कि संसार भर में समय-समय पर प्रकट हुए, विविध रूपों में आये हुए महापुरुष,पीर-पैगम्बर , संत-महर्षि, धर्म-प्रवर्तक, पंथ-प्रदर्शक, आदि .

मेरा आपसे निवेदन यही है कि विवेक को कभी नहीं छोड़ें. हम इंसान क्या हैं यदि हमारे भीतर में विवेक नहीं है . साधना का प्रारम्भ ही विवेक से होता है . चाहे जितनी ही पुस्तकें पढ़ लें, कितने ही साधन कर लें, चाहे सुबह से शाम तक साधना में बैठे रहें, यदि हम विवेक का मूल्य नहीं पहिचानते तो सब बेकार है. क्योकि विवेक से ही हमें इस मायावी संसार से, इसके अगणित आकर्षणों और प्रलोभनों से वैराग होगा. इधर से वैराग होने के साथ उधर परमात्मा से अनुराग बढ़ता जायेगा, और इसी अलौकिक, दिव्य प्रेम की पराकाष्ठा और परिणति में हमें प्रभु-प्राप्ति का परमानन्द प्राप्त हो सकेगा.

सारांश यही है कि हमें समझना चाहिए कि हम तो नश्वर जीव हैं. अतएव हम हरदम अपने ऊपर चौकीदारी करें कि पता नहीं दो क्षणों के बाद क्या होना है, उसके लिए सदा अपनी तैयारी करें. इसलिए जल्दी से जल्दी विवेक जैसी दुर्लभ शक्ति का अर्थ, सामर्थ्य और महत्व जानकर इस ईश्वरीय वरदान -स्वरुप शक्ति का सदुपयोग करके अपने मानव जीवन को धन्य करें .

गुरु महाराज सबका कल्याण करें .

राम सन्देश : जुलाई , १९९५.

संसार में रहते हुए हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिए ?

हम जो भी प्रार्थना या आराधना थोड़े समय के लिए करते हैं, वो अपने जीवन को कुशलता से बिताने की तैयारी के लिए करते हैं. यह एक process (तरीका) है. संसार या परिवार में रहते हुए हमारा जीवन सम्बन्धों का जीवन है. कहीं हमें ठोकरें मिलती हैं, गालियाँ मिलती हैं, कहीं हमें सराहा जाता है. शत्रु - मित्र सब मिलते हैं. परन्तु हमारी तैयारी यहीं है कि प्रतिकूल या अनुकूल - जैसी भी परिस्थितियां आयें, हम भीतर में सन्तुष्ट रहें, प्रसन्न -चित्त रहें, आनन्दमय रहें. ईश्वर से हम क्या भिक्षा माँगते हैं ? हम उसका प्रेम मांगते हैं. हम जब सुबह स्नान करते हैं, शरीर में चुस्ती आ जाती है. इसी प्रकार ईश्वर से हम ईश्वर के गुणों के लिए प्रार्थना करते हैं ताकि उनको अपना कर हम अपना जीवन मंगल मय बना सकें.

संसार में जो इस रास्ते पर आगे बढ़ता है उसको बड़ी उत्तेजनायें मिलती हैं. कई लोग जब मुसीबतें आती हैं तो घबरा कर रास्ता ही छोड़ देते हैं. कहते हैँ कि हम नहीं जानते कि गुरु कौन है, परमात्मा कौन है ? इस दुखमय अवस्था में इतनी परीक्षा होती है कि हम गुरु और ईश्वर दोनों को छोड़ देते हैं. ऐसे लोग कहते हैं कि वही लोग सुखी हैं जो संसार का शोषण करते हैं, पाप करते हैं. यह कैसा विधि का विधान है कि हम सात्त्विक जीवन व्यतीत करते हैं और हमें कष्ट मिलते हैं ? केवल साधारण व्यक्ति ही ऐसी बातें नहीं करते, परीक्षा की घड़ी में पुराने अभ्यासी भी डांवाडोल हो जाते हैं.

संसार में रहते हुए हमारा व्यवहार कैसा होना चाहिये ? अधिकाँश लोगों में रजोगुण प्रधान रहता है. तामसिक वृत्ति तथा सात्त्विक वृत्ति के लोग बहुत कम होते हैं. जो व्यक्ति सत्संग में हैं उसका जीवन कुछ विशेष होना चाहिये. कोई उसे उत्तेजना देता है तो उसे क्या करना चाहिये ? इसका उत्तर भगवान कृष्ण ने अर्जुन को गीता में दिया है कि हम अज्ञान को छोड़ें. अज्ञान को छोड़ने का मतलब है कि आप समझें कि मैं शरीर, मन, प्राण आदि नहीं हूँ. मैं तो आत्मा हूँ. मोह को छोड़े . मेरे -तेरे -पन को छोड़े, अहंकार को छोड़ें. सब कुछ परमात्मा का ही है.

ये दुःख -सुःख किसको महसूस होते हैं, चोट किसको लगती है ? हमारे अहंकार को. भगवान ने अर्जुन को तीन बातों से मुक्त कराने की कोशिश की है. ज्ञान को अपना कर , आत्मस्थित होकर, आत्मा के गुणों को समझकर अहंकार और मोह छोड़ने के लिये प्रेरणा दी है. अर्जुन समझता है परन्तु उसके भीतर में जो राजसिक वृत्ति के संस्कार हैं वे अभी निकले नहीं हैं. यही हालत हमारी है. हम रोज़ सत्संग में सुनते हैं कि यदि कोई आपके प्रति बुराई करता है तो उसको क्षमा कर देना चाहिये. परन्तु हमसे ऐसा होता नहीं है. दार्शनिक बातें कर लेना आसान है परन्तु जब वास्तविकता सामने आती है तब हम क्या करें ?

अर्जुन की राजसिक वृत्ति युद्ध के समय खतम नहीं हुई थीं. युद्ध -स्थल में रथ खड़ा है, युद्ध की सब तैयारियाँ हैं फिर भी वह भगवान से प्रश्न पर प्रश्न किये जा रहा हैं. भगवान कहते हैं कि व्यक्तिगत रूप में उत्तेजनाओं को सहन कर लेना

वीरता हैं. इस धरती पर सहनशीलता एक महान गुण है (सत्संगी का यह श्रृंगार है) परन्तु छः प्रकार के व्यक्ति हैं, उनका मुकाबला करने, उनका बध करने में कोई पाप नहीं है. समाज को कायम रखने के लिए यह ज़रूरी है कि जो तत्व समाज को बिगाड़ते हैं उनको समाज से निकालना या उनका बध करना या उनको किसी प्रकार से शारीरिक हानि पहुँचाना, ये कोई पाप नहीं है, जैसे कोई किसी की स्त्री का अपहरण कर लेता है, या राज पर कोई आपत्ति आ जाती है, या धर्म संकट आ जाता है - इस प्रकार की छह बातों पर भगवान ने छूट दीं है.

दूसरी तरफ़ भगवान महावीर हैं. एक राजा उनकी सेवा में आता है और कहता है कि मेरा पड़ोसी राजा मुझसे अकारण लड़ता है, मुझ से ईर्ष्या करता है क्योंकि उसकी तुलना में मेरे पास सम्पति कुछ अधिक है. भगवान कहते हैं -इसमें कौन सी कठिनाई है ? तुम अपना सारा राज्य उसको देकर मेरे पास आ जाओ और भिक्षु बन जाओ. उस राजा के समझ में आ जाता है और वह अपना राज्य दूसरे राजा को दे देता है. स्वयँ भी प्रसन्न चित्त और दूसरा राजा भी प्रसन्न हो गया. ईर्ष्या ख़त्म हो गई. वह राजा सात्त्विक वृत्ति का था. उसके संस्कार सात्त्विक थे. पर अर्जुन जो हमारा प्रतीक है और हम जो राजसिक वृत्ति लिये हुए हैं क्या करें ? जिनको इस अध्यात्म के रास्ते पर चलना है उनको तो भगवान महावीर का रास्ता अपनाना ही होगा. सब कुछ बलिदान करना होगा. जिनको संसार का रास्ता चलना है उनको अर्जुन का रास्ता अपनाना है. वो भी कोई साधारण या सरल रास्ता नहीं है, बहुत कठिन है .

संतों ने बीच का रास्ता बताया है. जो भगवान करते हैं वो हमारे हित के लिये है. इसकी गहराई में जाइए. यदि कोई तुम्हारा अपमान करता है और गुरुदेव कहते हैं कि यह तुम्हारे हित के लिये है तो उसे ठीक मान लो. दार्शनिक रूप में ये बातें अच्छी लगती हैं परन्तु जब कोई हमारा अपमान करता है तो हमारा मन बड़ा ख़राब होता है. ये क्यों होता है ? अधिकतर तो हम महापुरुषों के उपदेश का पालन नहीं करते. यह बात हमारे मन और बुद्धि में समाई ही नहीं है कि जो कुछ होता है हमारे हित के लिये होता है. इसका अभ्यास करना होगा. यही तत्व है हमारे यहाँ की पूज्य लाला जी महाराज की पुस्तक " अमृतरस " में लिखा है कि यह हमारे यहाँ का तप है. लानत, मलामत, अपमान आदि प्रतिकूल भावों को स्वीकार करना, ये हमारे हित में है. यह हमारे यहाँ का तप है. जो इसको स्वीकार कर लेता है वह आत्मा का साक्षात्कार कर लेता है. किन्तु यह बड़ा कठिन तप है .

संसार में जितनी बुराइयाँ होती हैं वे सब संस्कारों के परिणाम से होती हैं. जो व्यक्ति यह साधना करता है और इस पर विश्वास करता है कि हे प्रभु ! जो आप करते हैं हमारे हित के लिये ही है. उसको कभी दुःख का भान नहीं होता. यही 'राज़ी -ब -रज़ा ' (यथा लाभ सन्तोष) स्थिति है. अपनी गति को ईश्वर की गति में मिला देना. परन्तु यह बड़ा कठिन है. यही भगवान कृष्ण की रास लीला है .

लक्ष्य तो हमारा है उसकी (ईश्वर की) गति में अपनी गति को मिला देना. इसके प्रयास में हम समय -समय पर असफल भी होंगे लेकिन घबराने की ज़रूरत नहीं है. इसके अभ्यास में हमें अज्ञान का त्याग करना होगा, ज्ञान को अपनाना

होगा कि हर प्राणी में एक ही आत्मा काम कर रही है. जब यह सिद्धि प्राप्त हो जायेगी तब भीतर में से मेरा -तेरा पन छूट जायेगा. इसका फल यह होगा कि यदि आपके साथ कोई बुराई करता है तो आप तुरन्त उसे क्षमा कर देंगे. अभी हमारा स्वभाव क्षमा करने का नहीं हुआ है क्योंकि अभी हम अज्ञान की स्थिति में हैं. ज्ञान के विकास के बाद परमात्मा के गुणों की सुगंधि फैलने लगती है. पहला गुण है क्षमा का. हमें दोनों बातों का ध्यान रखना होगा जहाँ समाज का प्रश्न आता है वहाँ भगवान के उपदेश का पालन करना होगा. जहाँ व्यक्तिगत प्रश्न है वहाँ संतों की बात माननी होगी. जैसा व्यक्ति है उसका व्यवहार भी वैसा होना चाहिये. यदि आप सन्त बनते हैं तो पहले आपको सन्त गति को अपनाना होगा. परन्तु जहाँ समाज का सबाल आ जाता है वहाँ दीनता के उपदेश को नहीं मानना होगा. यदि समाज को क़ायम रखने के लिये कोई लड़ाई लड़नी पड़ती है, हिंसा का प्रयोग करना पड़ता है तो वो पाप नहीं पुण्य है. यह धर्म संकट सबको आता हैं कि हम क्या करें ? यदि आपके गुरु आपके समीप हैं तो ऐसी परिस्थितिओं में उनका परामर्श, उनका आदेश ले लेना चाहिये. जहाँ तक हो व्यक्तिगत हित के लिये सहनशीलता तथा क्षमा का गुण अपनाना चाहिये, दया और करुणा का गुण अपनाना चाहिये. अपने अहंकार को क़ाबू में रखना चाहिये .

दीनता का दूसरा रूप यह है कि जो ईश्वर करे उसमें तृप्त रहें, सन्तुष्ट रहें और यह स्वीकार करने का अभ्यास करें कि जो कुछ हो रहा है हमारे हित के लिए हो रहा है. यह कहने को तो बड़ा सरल लगता है लेकिन व्यवहार में बड़ा कठिन है. जो इस परीक्षा में सफल नहीं हुआ वो आत्मा का साक्षात्कार नहीं कर सकता.

जो पुराने अभ्यासी हैं उन्हें दीनता का, ईश्वर की गति में अपनी गति मिलाने का अभ्यास करना चाहिये. यह तभी होगा जब हम गुरुदेव के उपदेशों पर मनन करेंगे और उनका पालन करेंगे. गुरु नानक देव जी ने लिखा है कि व्यक्ति को मनन का अभ्यास करते रहना चाहिये. उन्होंने लिखा है 'सुण्यक ' यानी गुरु का, महापुरुषों का उपदेश सुनना, सत्संग में उपदेश सुनना. सुनने से साधक को परमगति मिल सकती हैं. साधक जब सुन कर मनन करता है तो उसका उद्धार हो जाता है. कोई साधना करने की, आँखें बन्द करने की ज़रूरत ही नहीं

होती. ठीक है कि आँखें बन्द करके अभ्यास करने से अनुभूति होती है, परन्तु जैसा कि गुरुदेव कहा करते थे, यह ईश्वर की पूजा है. मन एकाग्र हो जाता है. मन की एकाग्रता से आप आत्मा का भी साक्षात्कार कर सकते हैं, मानसिक और शारीरिक शक्ति प्राप्त कर सकते हैं. परन्तु जब तक इस पर मनन का रंग नहीं चढ़ेगा उस शक्ति का दुरुपयोग भी हो सकता है .

सहनशीलता महान तप है. लोगों की बातें, अपमान, सहन करना, दुःख सुःख सहन करना - ये हमारे यहाँ का तप है और यही दीनता है. मेरे साथ इसी तरह एक घटना हुई. हम गुरु महाराज के साथ सत्संग में फ़तेहगढ़ गये हुए थे. उस सत्संग में कुछ ऐसे लोग थे, तत्व थे , जिन्होने गुरु महाराज के प्रति कटु शब्द, अप - शब्द और जो कुछ भी कह सकते थे, उन्होंने कहा, कहते गये. गुरु महाराज के साथ मैं ही अकेला सत्संगी था. गुरुदेव कुछ नहीं बोले, मौन रहे , परन्तु मुझसे बर्दाश्त नहीं हुआ. कुछ देर सुनता रहा परन्तु ख़ून में जोश आता गया . आख़िर मुझसे नहीं बरदाश्त हुआ. मैंने बोलना शुरु

कर दिया. काफी उपद्रव हुआ. जब सब ख़त्म हो गया तब मैंने गुरु महाराज से पूछा कि मैंने ऐसा किया, कहीं गलती तो नहीं हो गई . उन्होंने कहा सरदारजी, आपके लिये यही योग्य था. भरी मजलिस में लोग आपके गुरु का अपमान करें और शिष्य उसको सहन करें, ये पाप है. गुरुदेव की हालत यह थी कि उन्होंने एक शब्द भी मुख से नहीं निकाला. आगे चलकर मुझे भी वो ही करना है जो कुछ गुरुदेव ने किया. वो भी अपने लिये चिन्ता नहीं करते थे परन्तु सत्संग के लिये यदि कोई भला - बुरा कहता था तो वह अनुशासन को पहले रखते थे. अनुशासन के लिये वे जो भी योग्य क़दम होता था, उठाते थे. वो क़दम उठाना भी दीनता का रूप है क्योंकि सत्संग को बचाना हैं. व्यक्तिगत हानि की कोई चिन्ता नहीं है परन्तु जहाँ समाज की हानि होती है वहाँ धर्म, अनुशासन पहले है. जहाँ तक हो सके दीनता को अपनायें, संसार के दुःख -सुःख हज़म करें. यही हमारे यहाँ का तप है और यही दीनता है . जब तक ये बातें व्यवहार में नहीं उतरतीं, तब तक भीतर में सच्ची शान्ति नहीं उपजती. ईश्वर का मिलना क्या है ? वो तो हमेशा आपके साथ ही है. भीतर में जैसे ही दीनता होगी, शान्ति होंगी, आप ईश्वर के बड़े ही समीप होंगे. जैसे ही मन में संकल्प -बिकल्प उठे, क्रोध आया, अहंकार आया, या दूसरे अवगुण आये, आप ईश्वर से कोसों दूर हो जाते हैं .

यह 'नाम ' क्या है? नाम का मतलब है ईश्वर से प्रेम करना. नाम का दूसरा रूप है प्रेम. प्रेम कहाँ ठहरेगा ? जहाँ कोई अवगुण नहीं होंगे. अवगुण दीवारें हैं. इन दीवारों को प्रेम से, नाम से तोड़ना है. भगवान कृष्ण ने अर्जुन की मोह की दीवारें तोड़ने का प्रयास किया.गीता के जितना उपदेश है, मोह और आसक्ति को तोड़ने के लिये है. आसक्ति टूट जाने पर ईश्वर और आपमें क्या अन्तर रह जाता है ?

हमें मन को एकाग्र करने के साथ -साथ मनन द्वारा सदगुणों को अपनाने का प्रयास भी करना चाहिये. जब तक हमारे भीतर में सदगुण नहीं आयेंगे, सदव्यवहार और सद वृत्ति नहीं बनेगी तब तक साधन से मन एकाग्र तो हो जायेगा परन्तु हमारे भीतर में सात्विकता और सत्यता न होने के कारण आत्मा का साक्षात्कार नहीं होगा. सच्चा सुःख नहीं मिलेगा. वो सुःख जिसकी प्राप्ति हो जाने पर संसार असार मालुम होता है, तभी मिलेगा जब भीतर की दीवारें टूट जायेंगी. दीवारें तोड़ने का सरल उपाय है दीनता. तो दीनता अपनायें, सदगुणों को

अपनायें, अपने गुरुजनों की वाणी पर मनन करें और उसके अनुसार अपना जीवन बनायें .

ईश्वर आप सबका भला करें .

साधना के तीन अनिवार्य आयाम - निर्मलता, निवृति एवं ज्ञान प्राप्ति

सब प्रकार की साधना सही है. कोई साधना गलत नहीं है. यदि जीवन का कोई लक्ष्य है तो वह लक्ष्य क्या है ? स्वामी विवेकानंद ने अपने एक लेख में लिखा है जिसका सार है कि साधना करते-करते तीन चरणों में से गुज़रना पड़ता है . उन्होंने पहला चरण बताया है purgation का, अर्थात अपने अवगुणों की सफाई का. हम सब लोग संसार में फंसे हुए हैं. कोई शरीर के साथ बंधा है तो कोई मन के साथ बंधा है, तो कोई अहंकार के साथ बंधा है. सब लोग परतंत्र हैं. किसी को अपने रूप की पहिचान नहीं है. वह नहीं जनता कि वह क्या है ? ऐसा नहीं कि विवेकानंद जी साधारण व्यक्ति की बात कर रहे थे, वह बात कर रहे थे उन साधकों की जो इस रास्ते पर चल रहे हैं और गंभीरता से चल रहे हैं. उनका कहना था कि जैसे हम अपने घर का कमरा साफ़ करते हैं, झाड़ू-पोंछा करते हैं उसी तरह हमें अपने भीतर भी सफाई करनी है.

यदि हम गंभीरता से स्व-निरीक्षण करके देखें तो हमें अपने विचारों से, अपने व्यवहार से पता चल जाता है कि हमारी आं तरिक स्थिति क्या है ? क्षमा करेंगे, हम सब भीतर से मलीन हैं. हमारे चित्त पर अतीत के संस्कार अंकित हैं जिसके परिणामस्वरूप हमारा व्यवहार बनता है. हम जो कुछ बोलते हैं या जो विचार करते हैं या किसी के साथ व्यवहार करते हैं, उसके द्वारा ही हम अपने चित्त की निर्मलता को प्रकट करना है - यही प्रथम चरण है.

पूज्य गुरुदेव (डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज) फ़रमाया करते थे कि साधना करने से पहले नाभि पर ध्यान रखकर श्वांस को ऊपर खींचें और वहां श्वांस को स्थिर करके ओम तत्स , ओम तत्सत, ओम तत्सत कहें, तीसरी बार जो चोट है वह हृदय पर मारें. ओम तत्सत का मतलब है कि सिवाय परम पिता परमात्मा के, जो शांति का, प्रेम का और आनंद का सागर है, उसके अतरिक्त कुछ नहीं. यह चोट हृदय पर मारने का मतलब है कि हमारा चित्त निर्मल हो यह कह कर कि सिवाय प्रभु के कुछ भी नहीं है. बाकी जो भी विचार भीतर में उठ रहे हैं उनसे मुक्ति पाने के लिए मुख्य साधन यही है कि परमपिता परमात्मा के साथ हमारी तदरूपता हो जाय . सिवाय परमात्मा के भीतर-बाहर और कुछ नहीं है.

ओम तत्सत, ओम तत्सत - ये दो-चार बार कहने से कोई विशेष लाभ नहीं होगा. परन्तु साधना की यह नीव है. इसको विवेकानंद जी ने purgation कहा है जो अंग्रेजी का एक शब्द है जिसका अर्थ है : सफाई करके उस गंदगी को बाहर निकलकर फेंक देना. यही साधना का सबसे कठिन और मुख्य चरण है. इस गंदगी को बाहर निकालकर फेंक देना बड़ा कठिन है. हमारे विचार, हमारा व्यवहार, हमारी वाणी - सब मलीनता लिए हुईं हैं. उनमें शुध्दि यानी शुद्ध ज्ञान नहीं है. तो झाड़ू देने या सफाई करने में जितना भी समय लग जाये, घबराना नहीं चाहिए.

मैने कई बार लाला जी महाराज का भी हवाला दिया है. उनका इरशाद था कि स्व-निरीक्षण करके अपनी एक बुराई को लीजिये और उस बुराई को त्यागने के लिए साधना करते रहिये. पूज्य लालजी महाराज का कहना था कि लोगबाग तप करते हैं. शुरू में ज्ञान मार्गी purgation का, निर्मलता की प्राप्ति के लिए तप किया जाता है. गर्मियों में वो अपने आगे अग्नि जला लेंगे और अपने आप को और भी बहुत कष्ट देंगे - यह झूंठ व गलत नहीं है, सही है. परन्तु गृहस्थ लोगों के लिए जो संसार में रहते हैं, यह बहुत कठिन है. वे लोग इतनी कठिन तपस्या नहीं कर सकते. विचार के माध्यम से सफाई सब कर सकते हैं. यह साधना का श्री-गणेश है. ऊपरी सफाई या निर्मलता करना कुछ ऐसा है मानो जब कमरा साफ़ हो जाता है तो उसमें अगरबत्ती जलाना कमरे में शुद्धि का वातावरण आकर्षण पैदा करता है, फिर वहां कुछ देर बैठने को मन करता है. यह विषय तो बहुत लम्बा है, मैं संक्षेप में वर्णन करूंगा .

उन्होंने purgation के बाद दूसरा चरण annihilation यानी पूर्ण निर्मलता प्राप्त करने के लिए अपनी बुराइयों को बिल्कुल समाप्त कर देना बताया है. इसके लिए भी वही साधन है जो मैने अभी निवेदन किया है - पूज्य लाला जी महाराज का जो इरशाद है उसका पालन करना. गुरुदेव ने तो यहां तक कहा है कि एक डायरी या कॉपी बना लें. अपने मन का निरीक्षण करते रहें और जो बुराई आपको दिखे, उस कॉपी में नोट कर लें. कुछ लोग पहले जो सबसे बड़ी बुराई होती है उसको त्यागने की कोशिश करते हैं किन्तु गुरु महाराज का आदेश था कि पहले उस बुराई को त्यागने का प्रयास करें जो जरा हलकी या मामूली सी है. उस बुराई को त्यागने में कितना भी समय लग जाए, घबराएं नहीं. इस तरह अपने अवगुणों के पूरे त्याग को, complete annihilation process को एक जन्म नहीं कई जन्म लग जाते हैं.

विवेकानंद जी तो संस्कारी जीव थे उनके महान गुर, रामकृष्ण परमहंस जी की उन पर असीम कृपा थी. इसीलिए उनको अपने अवगुणों को त्यागने में उतना समय नहीं लगा जितना समय हमको लग सकता है और जिसके लिए पूज्य गुरुदेव ने हमें सचेत भी कर दिया है कि घबराना नहीं चाहिए, एक जन्म नहीं चाहे जितने भी जन्म लग जाएं. अपने चित्त को निर्मल करिये. जब तक चित्त निर्मल नहीं होगा, भले ही आपको प्रकाश दिखाई दे जाये, शब्द सुनाई दे जाये, ध्यान लग जावे - ऐसा नहीं समझ बैठना कि आपको परमात्मा मिल गया.

विवेकानंद जी ने अपने लेख में तीसरा स्वरुप बताया है enlightenment का अर्थात ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करना. नाम कुछ भी ले लीजिये, संक्षेप में उद्देश्य तो परमात्मा जैसे बनने का प्रयास करना है.

तू तू करता तू भया, मुझ में रही न हूँ

आपा पिरका मिट गया, जित देखूं तत तू .

भीतर बाहर परमात्मा ही होना चाहिए. ' मैं ' का जो भाव है जिसके परिणामस्वरूप आप अपने को परमात्मा से पृथक समझते हैं वो ख़त्म हो जाना चाहिए . यह बड़ा कठिन है. कहने मात्र से नहीं होगा. अपनी बुराईयों को पूर्णतः निकालने के

बाद ही यह प्रकाश, यह ज्ञान प्राप्त होगा. यह अस्थायी नहीं होना चाहिए. यह आपका रूप बन जाये, स्थायी रूप बन जाये. आप परमात्मा हैं. आप कहते हैं ' अहं ब्रह्म अस्मि ' - परन्तु कहने मात्र से कुछ नहीं होता.

महर्षि रमन कहते हैं की ऐसे अहं ब्रह्म अस्मि - तीन अक्षर कह देने से कुछ नहीं बनता. साधना करते हुए अहं से अहंकार निकल जाना चाहिए. यह कहना अभी भी यह संकेत देता है कि अहं वहाँ मौजूद है. अहं और अहंकार ये दोनों ही खत्म हो जाने चाहिए तब क्या बचेगा ? केवल ब्रह्म, परमात्मा, ज्ञान, सत्यता, आनंद. तब आप ब्रह्म हो सकते हैं. उससे पहले अहं ब्रह्म अस्मि कहने में कुछ संतोष पाना भ्रम मात्र है,साधना की सिद्धि नहीं है. साधना की सिद्धि तब है जब अहं और हूँ दोनों समाप्त हो जाएँ.

अंदर बाहर एकौ जानो एह गुरु ज्ञान बताई

कहु नानक बिन आपा छीने मिटे न भ्रम की काई

हमारा यह जो आपा या खुदी है, " मैं " है, वास्तव में उसे ख़त्म करना है. यह नहीं कि दो-चार क्षण के लिए सत्संग में बैठे नहीं कि आपके भीतर में अहंकार रहा ही नहीं. जब व्यक्ति ऐसा व्यवहार करता है कि -

जो नर दुःख में दुःख नहीं माने, सुख सनेह और भय नहीं जाने

तब उसकी यह स्थिति आती है. यह केवल काव्य लिख देने मात्र की बात नहीं है. जिन्होंने यह रचना लिखी है, हम जरा उन नवे गुरु तेगबहादुर जी के जीवन की और ध्यान दें.

औरंगज़ेब के पास कश्मीर के पंडित गए. बातचीत की कि "आप हमें क्षमा कर दो. हमारा जीवन तो आत्मिक जीवन है. हम तो देश में, विश्व में आत्मिक ज्ञान प्रदान करते हैं. " कश्मीर कि सभ्यता बड़ी मशहूर थी. वहां के पंडित वास्तव में ऊंचे ज्ञानी होते थे. परन्तु औरंगज़ेब ने कहा - " मैं एक शब्द सुनने के लिए तैयार नहीं हूँ, या तो इस्लाम क़बूल करो या तुम सब का बध होगा ". तो पंडितों ने हाथ जोड़कर कहा कि, " जनाब गुरु तेगबहादुर साहब का नाम तो अपने सुना होगा. आप उनसे बात करें. " इस पर भी धर्मान्ध औरंगज़ेब ने कहा - " हाँ, ऐसा कोई व्यक्ति अपना बलिदान दे दे तो मैं आपको छोड़ दूंगा. " कश्मीरी पंडित गुरुदेव की सेवा में आये, प्रार्थना की, उनकी आँखों में गंगा बह रही थी, उन्होंने बताया कि इस तरह की बातचीत औरंगज़ेब से हुई है. गुरुदेव कहते हैं कि " आप लोग क्यों इतना परेशान हो रहे हैं. चिंता मत करिये, मैं तैयार हूँ ."

औरंगज़ेब को कह दिया गया और भेंट का समय तय कर दिया गया. औरंगज़ेब ने सोचा क्यों न पहले गुरुदेव को डराएं. इसके लिए औरंगज़ेब ने कहलाया कि पहले गुरुदेव के परमशिष्य भाई मतीदास की मौत होगी, वर्ना मुसलमान बन जाओ. उनकी मनाही करने पर उसने भाई मतिदास को कहा कि " चलो पहले तुम्हारी ही बलि होगी. आरी से उनके

शरीर के दो टुकड़े करवा दिए गए. ज़रा ख्याल कीजिय , शरीर के दो टुकड़े करना, सिर से लेकर पाँव तक. भाई साहब तनिक भी विचलित नहीं हुए. बहुत महान ऊँचे अभ्यासी थे और अच्छे संत थे वह. दिल्ली के चांदनी चौक में जो फब्बारा बना हुआ है वह उन्ही भाई मतीदास की पवित्र स्मृति में बना है. आपने भाई परमानन्द का नाम सुना होगा जो आर्य समाज के बहुत ऊंचे नेता थे. उन्हीं के पुत्र भाई महावीर मध्य प्रदेश के गवर्नर रहे हैं. ' भाई ' का यह टाइटल मतीदास के वक्त से ही उनके खानदान में चला आ रहा है.

परन्तु गुरुदेव तेग बहादुर जी पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा . तब औरंगज़ेब को बहुत गुस्सा आया, इतना क्रोध आया कि उसने इनके क़त्ल करने के लिए हुक्म दे दिया कि इनका भी सिर काट दो. जल्लाद ने तलवार से एक क्षण में सिर काट दिया. ऐसे महापुरुष ने ये शब्द लिखे हैं - " जो नर दुःख में दुःख नहीं माने " इन शब्दों के पीछे उनकी जीवनी है - यह कोई साधारण कविता नहीं है.

हम प्रतिदिन देखते हैं कि हमारे जीवन में, हमारी दिनचर्या में कितनी बार उतार-चढ़ाव आते हैं. हम कभी मुस्कराते हैं, हँसते हैं, मिठाई बांटते हैं, कोई कष्ट आ जाता है तो रोते-चिल्लाते हैं. यह तो साधक का जीवन नहीं है. साधक को अपना जीवन इतना ऊंचा बनाना ही पड़ेगा जितना गुरु तेगबहादुर जी ने अपना बलिदान देकर हमें प्रेरणा दी है. ज़रा इस बलिदान की भूमिका को भी देखें. उनके सुपुत्र गोविन्द राय उस वक्त नौ वर्ष के थे. काश्मीरी पंडितों की पुकार सुनकर गुरुदेव ने उनसे पूंछा कि बरखुरदार हमें क्या करना चाहिए ? गोविन्द राय झट से बोले - " पिताजी, आपसे बड़ा कौन हो सकता है जो अपनी क़ुरबानी दे सकता है ." एक नन्हा बालक अपने पिता को कहे कि जाओ अपना बलिदान दे दो. आप कहेंगे कि यह सब कहने मात्र की बातें हैं. नहीं, ये ऐतिहासिक सच्चाई की बातें हैं. हमारे देश की संस्कृति महान संस्कृति है. हमारे देश की धरती ने बहुत उच्च कोटि के ऐसे महापुरुष पैदा किये हैं.

कसूर हमारा है कि हम अपनी संस्कृति को भूलते जा रहे हैं, छोड़ते जा रहे हैं. भाषा, पोशाक, आदि से कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता. किसी ने बाल रखे तो किसी ने नहीं रखे. नवें गुरु तक बाल रखने का कोई नियम नहीं था. गुरु नानकदेव जी की सिख परम्परा में यही नवें गुरु थे. नवें गुरु तक कोई केश, कड़, कंघी. कच्छा, किरपान वाली ऐसी वेश-भूषा में तब्दीली नहीं थी. सीख को पंजाबी में शिक्षा कहते हैं. सिख उसको कहते हैं जो बलिदान देने की गुरुदेव की शिक्षा को माने. बालक कहता है कि पिताजी आपसे बड़ा और कौन हो सकता है ? जाइये, बलिदान दे दीजिये. तो यह थी पिता की प्रेरणा जिससे उन्होंने अपना बलिदान दे दिया. सुपुत्र (जो बाद में अमर योद्धा संत, दशम गुरु गोविन्द सिंह कहलाये) की यही अवस्था या आयाम है जबकि आदमी समता में आता है तब आदमी विवेकानंद जी के कहने के अनुसार illumination

(प्रकाश) पाता है. उस आत्मिक ज्ञान से शरीर को, प्राणों को, मन को बल मिलता है. वह दुःख-सुख आदि द्वंदों से ऊपर उठ जाता है.

साधना का रूप व्यावहारिक जीवन हो

हम और आप तो सिर्फ कहने भर को अभ्यास करने की कोशिश कर रहे हैं. हमारी वह स्थिति कहाँ है जो बालक गोविन्द सिंह की थी ? साधना जो है वह व्यावहारिक हो. हमारा व्यवहार साधना रूप नहीं बना तो समझ लीजिये, साधना में कुछ प्रगति नहीं हुई. छोटी-छोटी बातों में हमें अहंकार आ जाता है, क्रोध आ जाता है, द्वेष और ईर्ष्या उतपन्न हो जाती है. मैं बार-बार आप लोगों से निवेदन करता रहता हूँ कि अपने व्यवहार को, अपने जीवन को साधना रूप बनाइये. गुरुदेव कहा करते थे कि स्वनिरीक्षण करते रहना चाहिए. रोज़ नहीं तो सप्ताह में, सप्ताह में नहीं कर सकते तो महीने में एक बार स्व-निरीक्षण करें. और अगर महीने में भी नहीं कर सकते तो वर्ष में एक बार. जीवन में कभी करो तो सही.

कई बार तो वास्तव में रोना आता है कि इतने वर्ष हो गए और यह दुर्दषा है हमारी कि हमें अभी तक क्रोध आ जाता है, मन विचलित हो जाता है. हमारे भीतर में बुरे विचार भी आते हैं. मैं गलत नहीं कह रहा हूँ. यह वास्तविकता है. अपने जीवन के आधार पर ही आपसे करबद्ध प्रार्थना करता रहता हूँ कि अपने जीवन को ही साधना का रूप बनाइये.

अतः में पुनः आपके चरणों में अनुरोध करता हूँ कि अपने जीवन को ही साधना का रूप बनाइये. हम आँख बंद करके बैठते हैं, यह तो श्री गणेश है, ठीक है. करो, इससे बल मिलता है. परन्तु सारा दिन जो आपकी जीवन-क्रिया है, जो कुछ भी आप करते हैं, वही साधना का रूप होना चाहिए. कोई आपको बुरा कहे तो आपको बुरा न लगे. कहते हैं कि कोई आपके गाल पर थप्पड़ मारे तो आपको क्रोधित नहीं होना चाहिए. उस व्यक्ति के घर जाकर उसके पैर दबाने हैं. भला, मैं और आप, क्या ऐसा व्यवहार कर सकते हैं - " फरीदा बुरे दा भला कर." यह हम रोज़ कहते हैं, पढ़ते हैं, मगर हमारी ऐसी हालत होती नहीं है. हमें दीनता तो सीखनी ही पड़ेगी.

अनुकूल और प्रतिकूल स्थिति में सम-भाव

इस संसार में रहेंगे तो प्रतिकूल परिस्थितियां भी आएंगी और अनुकूल परिस्थितियां भी आएंगी. लोग -बाग हमें उत्तेजना भी देंगे और परिस्थितियों से हमें भी तरह-तरह का दुःख-सुख लगेगा. फिर ऐसी दशा में व्यक्ति को करना क्या है ? संतवाणी है ' कंचन माटी माने ' - कंचन रुपी, मिटटी रुपी, दुःख-सुख को एक जैसा मानें. ऐसा भाव है कि सबमें ईश्वर के दर्शन करें. सभी एक हैं, सब एक उसी के रूप हैं. यदि आप दीन साधक बन गए हैं तो आप खुद अपने को सबसे नीचा समझिये. अपने आपको सबसे नीचा.

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न दीखा कोय

जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय

प्रत्येक जिज्ञासु का आंतरिक भाव होना चाहिए कि वह अपने आप को दोषी माने.

नै निंदिया नहीं उत्सक जाके लोभ मोह अभियाना

संसार में कोई हमारी निंदा भी करेगा,स्तुति भी करेगा, लोग भला -बुरा भी कहेंगे. संसार मे रहकर लोभ भी उत्पन्न होता है और हम अपमान से दुखी हो जाते हैं. हमें इन सब द्वंदों से मुक्त रहना होगा. हम पर इन सब द्वंदों का प्रभाव न पड़े. आप देखेंगे कि प्रत्येक व्यक्ति प्रातः से लेकर सायंकाल तक द्वंदों में फंसा रहता है. मेरी हालत तो यही है, आपकी शायद न हो.

हरक साध से रहे नचोरा , रहे मान अपमाना

ख़ुशी भी होगी, क्लेश भी होगा. इन दोनों से अछूते रहिये. न तो आपके भीतर में अहंकार आना चाहिए और न ही आपको अपमान से पीड़ित होना चाहिए.

सब इच्छाओं , सब आशाओं को त्याग दीजिये , भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को गीता के दूसरे अध्याय में यही समझाया है कि इच्छाओं और आशाओं को त्यागो क्योकि इनसे मन को दुःख होता है , परेशानी होती है . व्यक्ति के भीतर अहंकार उत्पन्न होता है , क्रोध उत्पन्न होता है. इनके उत्पन्न होने से सब कुछ नाश हो जाता है, सब नाश हो जाने का मतलब है कि अहंकारी व्यक्ति दूसरे को भी दुःख पहुंचाएगा और उसके भीतर में साधना करते करते जो कुछ प्रगति हुई होगी उसका भी नाश हो जायेगा. हमारी सब साधना को नष्ट करने वाला तथा संसार में सबको दुःख देने वाला क्रोध है जो अहंकार के कारण उत्पन्न होता है. तो हमारी कोशिश यह होनी चाहिए कि हम इस अहंकार से बचें और दीनता को अपनाएं. हम दीन, दीनातिदीन अति दीन बनें.

आसा मनसा सगल तियागो, जगते रहे निरासा

संसार में रहोगे और संसार से अछूते रहोगे - यह भगवन कृष्ण ने अर्जुन को समझाया है. अर्जुन चाहता है कि मैं चला जाऊँ, सन्यासी बन जाऊं . भगवान कहते हैं - " धर्म यह है कि तू लड़ेगा, मगर लड़ता हुआ अछूता रहेगा. इसका प्रभाव तेरे चित्त पर नहीं पड़ेगा. " यह बड़ा कठिन है. हम गीता या महाभारत पढ़ते हैं, अर्जुन कई बार अपने लक्ष्य से

गिरा, परन्तु उसके पास गुरुकृपा थी - भगवान कृष्ण जैसे महान गुरु की कृपा थी, जो प्रतिक्षण प्रतिपल, प्रत्येक परीक्षा में उसकी सहायता करती थी.

काम क्रोध जय हरसे नाहिन, ते घट ब्रह्म निवासा

जिसके हृदय में काम, क्रोध आदि की कामनाएं - इच्छाएं उत्पन्न नहीं होतीं और जब वे उत्पन्न होती हैं और उनकी पूर्ती नहीं होती तो क्रोध उत्पन्न होता है - दोनों को छोड़िये. यह बड़ा कठिन है, जिसमें हम सब फंसे हुए हैं. हर हाल में ऐसे भक्त की गति स्थिर है, वही 'ब्रह्मदेश ' का निवासी है. हम उसको आदर्श पुरुष कह सकते हैं. आप सबको इस लक्ष्य को अपने सम्मुख रखना है.

गुरु किरपा जे नर की कीन्ही यह ते गति पहचानी

नानक लीन्ह भयो गोविन्द सो, ज्यों पानी संग पानी

भगवान कृष्ण जैसे गुरु मिल जाएँ तब उद्धार होता है. गीता, भागवत जैसे ग्रन्थ बताते हैं कि भगवान कृष्ण जैसे गुरु होते हुए भी अर्जुन को गति नहीं हुई किन्तु शिष्य, जिस पर गुरु कृपा हो गयी है, वह इस युक्ति को समझ सकता है और अपने जीवन को सफल बना सकता है. सफलता किस प्रकार की - जैसी - ' नानक लीन्ह भयो गोविन्द सों '.

यदि परमात्मा में अपनी लवलीनता इस प्रकार से हो जाएगी जैसे बारिश होती है तो बारिश की बूँदें पानी के साथ मिलती हैं और फिर अपना अस्तित्व खो देती हैं, सागर ही बन जाती हैं. कृपा करके मेरी इस तुच्छ प्रार्थना को स्वीकार करें और गंभीरता पूर्वक अपनी दिनचर्या को ही साधना का रूप बनायें .

राम सन्देश : मई-जून २००१.

" साधो सहज समाधि भली " - गागर में सागर हैं संत कबीर के पद

विद्वान पंडितों की नगरी काशी में स्वामी रामानंद जी काफ़ी विख्यात हो चुके थे. स्वामी रामानंद कोई साधारण व्यक्ति नहीं थे, वह बड़े महान संत थे - बड़े ही सहज स्वभाव के पूर्ण समर्थ संत थे. कबीर जी भी उनकी महिमा से परिचित थी. कब से कबीर के मन में शंका थी कि मैंने गुरु धारण नहीं किया है, सो आख़िरकार उनकी वो शंका दूर हो गयी जब कि वे एक दिन घाट की उन सीढ़ियों पर जाकर लेट गए जहां से स्वामी रामानंद जी स्नान करके भोर के अँधेरे में लौटा करते थे. वहीं पर कबीर जी से रामानंद जी का जब पैर टकराया तो वह चिल्ला उठे - ' राम राम ' . बस इन्हीं शब्दों को गुरु-मंत्र मानकर कबीर जी ने स्वामी रामानंद जी को मन ही मन अपना गुरु धारण कर लिया और फिर आनंदमग्न होकर कहने लगे - ' मेरी दीक्षा आज पूरी हो गयी, मैंने गुरु धारण कर लिया. '

लोगों को जब बाद में पता लगा कि स्वामी जी ने एक मुस्लिम युवक को राम -नाम का उपदेश दिया है तो ब्राह्मणों ने काफ़ी उपद्रव मचाया. परन्तु संत कबीर ने इसकी कोई चिंता नहीं की. समय बढ़ता गया, कबीर की ख्याति सारे काशी में फैल गयी. ब्राह्मण लोग इनसे ईर्ष्या करते थे कि एक मुसलमान राम का नाम लेता है पर और लोग इनका सम्मान करते थे. उनके अनुयायी दिन-प्रतिदिन बढ़ते गए. दूसरी और मुसलमानों की नाराज़गी इतनी बढ़ी कि नबाब को कहा गया कि ये तो हमारे ईमान को खराब कर रहे हैं. उधर ब्राह्मण कहते ही थे कि कबीर के राम का नाम लेने से हमारे धर्म का नाश होता है, कबीर को हमारे सामने पेश किया जाय.नबाब भी नहीं चाहता था कि एक मुसलमान राम का नाम क्यों लेता है, उसे तो पक्का मुसलमान बनना चाहिए. उधर हिन्दू चाहते थे कि कबीर से बदला लिया जाए ताकि वह राम का नाम लेना छोड़ दे.

दोनों पक्षों की बात सुनकर नबाब ने कबीर को बुला कर कि, ' तुम तो मुसलमान हो, अल्लाह का नाम लो, नमाज़ पढ़ो.' कबीर ने कहा, ' मेरा तो अल्लाह, ईश्वर, खुदा, राम -सब वही है '. उसको राम कह लो या खुदा कह लो वही मेरा भगवान है.' परन्तु नबाब संतुष्ट नहीं हुआ. लोगों में भी उत्तेजना थी तो नबाब ने कहा कि इसको रस्सी से बांधकर गंगा में बहा दो , यह डूब जायेगा और ईमान की बात रह जाएगी. परन्तु भगवान के भक्तों को कौन कष्ट दे सकता है ? वे तो हमेशा प्रभु की गोद में खेलते हैं. लोग तमाशा देखते रहे, कबीर को पत्थर से बांधकर गंगा में डुबो दिया गया. .

कबीर बहते-बहते फिर गंगा के तट पर आ गए. लोगबाग चकित रह गए कि इतने गहरे पानी में कबीर वैसे के वैसे रहे, उनको तो पत्थर से बाँधा गया था, उन्हें तो डूब जाना चाहिए था पर वह कैसे डूबे नहीं ? नबाब भी यह सुनकर दंग रह गया. मुल्ला लोग हैरान हुए और ब्राह्मण भी कुछ बोल नहीं सके.

यही ईश्वर की कृपा है. तब भी लोग ईष्या से बाज नहीं आये. कबीर जी को सज़ा देने की योजना बनाई गई कि उन्हें हाथी के पाँव से बांधा जाए. वहां भी भगवान ने जैसे भक्त प्रह्लाद को बचाया था, वैसे ही कबीर साहब की रक्षा की. हाथी के पैर से बांध दिए जाने पर भी कबीर वैसे ही मस्त रहे, भगवान ने उन्हें कोई कष्ट नहीं होने दिया. तब ईश्वर की ऐसी लीला हुई कि नबाब बीमार पड़ गया और मज़बूर होकर उसे कबीर को छोड़ना पड़ा. इस प्रकार समाज ने बहुत उत्तेजना दी परन्तु भगवान ने हमेशा ही कबीर साहब की रक्षा की.

कबीर साहब को संतमत का शिरोमणि माना जाता है. मैं तो कहूंगा कि उस समय भारत की संस्कृति को कायम रखने के लिए कबीर साहब ही एक व्यक्ति थे और उन्हें ही इसका श्रेय जाता है. रामानंद जी ने केवल कबीर साहब को ही नाम नहीं दिया, उन्होंने रविदास जी को भी अपना शिष्य बनाया जिनको चर्मकार की जाति का होने से हमारे हिन्दू समाज ने तिरस्कृत किया था. स्वयं पक्के ब्राह्मण होते हुए भी, स्वामी रामानंद जी ने दलित वर्ग के लोगों को भी अपनाया. हमारा हिन्दू समाज हमेशा अपने ही समाज का विभाजन करता आया है. पता नहीं ऐसा क्यों होता रहा है? परन्तु इतना होने पर भी ईश्वर की मौज़ ऐसी है जिसने अब तक हिन्दू समाज को बचाया हुआ है.

कबीर साहब ने इतनी वाणी लिखी है, उसको भी पंडित समाज ने स्वीकार नहीं किया. बहुत कम लोग कबीर साहब की वाणी को पढ़ते-सुनते या गाते हैं. परन्तु सिक्खों के पांचवे गुरु श्री अर्जुन देव जी ने सौ-दो सौ साल बाद कबीर साहब की वाणी को एकत्रित किया और उसे गुरु ग्रन्थ साहब में संकलित कराया. आप लोग यह जानकर चकित होंगे कि कबीर साहब की वाणी गुरु ग्रन्थ साहब की वाणी का तिहाई हिस्सा है. इतना अधिक आदर कबीर साहब को गुरु साहब ने दिया.

कबीर साहब का एक भजन मुझे बहुत ही प्रिय है और यह साधकों के लिए बहुत ही मूल्यवान एवं सहायक हो सकता है. लोग पूछते हैं कि हम क्या साधना करें, हमारी साधना का क्या रूप होने चाहिए ? हमारे जीवन का क्या रूप होने चाहिए ? आदि . इस सबका इस छोटे से भजन से हमारा मार्गदर्शन होता है. जो भजन मैं बता रहा हूँ, उसका जो भाव है वो आप ध्यान से सुनते और समझते जाइये. कबीर इस भजन की पंक्तियों में एक-एक शब्द से साधना की बड़ी गंभीर बातों को बड़ी सरलता से समझाते जाते हैं. यही कबीर साहब की महानता है, उनकी सहज वाणी की विशेषता है.

भजन को पढ़िए, बार-बार पढ़िए, फिर मनन करें और देखें कि हमारे भीतर में क्या कमी है. यदि कबीर साहब के रोम-रोम में राम बसते हैं, परमात्मा बसते हैं और वह परमात्मा का रूप ही थे, तो फिर हमारी स्थिति वैसी क्यों नहीं होती, जबकि साधना करते-करते हमें इतने साल हो गए ? कबीर साहब जीवन का जैसा रूप सिखाना चाहते थे, हमारे जीवन का वैसा रूप क्यों नहीं है, उसमें क्या कमी है ?

साधो सहज समाधि भली

गुरु- प्रताप जा दिन स्यों जागी

दिन - दिन अधिक चली

ये सहज समाधि क्या है ? कबीर साहब कहते हैं कि यह बड़ी सरस सहज समाधि है जो गुरु कृपा से प्राप्त हुई है. यहाँ इनका गुरु का जो भाव है वह ईश्वर का भाव है. रामानंद जी केवल प्रतीक थे, उन्होंने केवल राम - नाम का ध्येय दिखाया, उन्होंने न कोई उपदेश ही दिया और न कबीर साहब उनकी सेवा या कीर्तन में जाते थे. उनके नियम व उपदेश या वाणी भी उन्होंने नहीं सुनी. तो यहां गुरु का कार्य जो है वह परमपिता परमात्मा का है. अब सहज समाधि के मायने क्या हैं ? क्या सीधे-सीधे आराम या शांति से बैठ जाना ही सहज समाधि है ? सहज समाधि के मायने बड़े गूढ़ हैं.

जैसा मैने पहले भी निवेदन किया है कि दो रास्ते हैं. एक है - करना, यानि अभ्यास का करना. पूजा करें, ध्यान करें, आदि, इस 'करने ' के और भी कई तरीक़े या साधन हैं. दूसरा है - कुछ ना करना. यह भाव जो कबीर साहब कह रहे हैं, ये उस वक्त कह रहे हैं जब वो अपने साधना के जीवन के बहुत ऊंचे स्थान पर पहुंच चुके थे. उन्होंने ये शब्द प्रारम्भ में नहीं कहे हैं.

हाँ , कुछ न करना - बहुत कठिन है. आप बैठे हैं और सुषुप्त अवस्था में हैं. जैसे रात को सोते हैं तो आपको नींद आ जाती है. सुषुप्त अवस्था में आते ही आप गाढ़ी निन्द्रा में चले जाते हैं. उस वक्त आपको कोई विचार नहीं आते और न आपका शरीर हिलता है. हम भी जब साधन करते हैं तो हम भी यही चाहते हैं कि हमारे भीतर कोई विचार न आवें और हमें आनंद मिले - मगर ये करने से नहीं होगा.

ये साधन हमारे यहां भी होता है जिसमें कि कुछ नहीं करना है. हमारा न शरीर हिलेगा, न मन हिलेगा, न इन्द्रियां और बुद्धि हिलेंगी . सब सुषुप्त अवस्था में आ जायेंगे. निंद्रा से यहां मायने न करने से है, यानि कुछ भी नहीं करना है. प्राण की गति इतनी धीमी हो जाती है कि स्थिति एक नशे की सी होती है. मन में संकल्प-विकल्प नहीं उठ रहे हैं. ये संकल्प-विकल्प ही भीतर में चंचलता पैदा करते हैं जो हमें ईश्वर की तरफ नहीं जाने देते हैं. बुद्धि का जो तर्क है, कि ये अच्छा है, ये बुरा है - ये द्वन्द हमें तंग करते हैं. ये हमें ईश्वर की तरफ नहीं जाने देते हैं. ये जो हम जिसको आनंद कहते हैं वो भी हमारे रास्ते में बाधा है . यहां तो सहज -समाधि के मायने है कि आप सुषुप्त अवस्था में चले गए , कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है. मैं और परमात्मा एक हो गए हैं.

कबीर साहब कहते हैं -

' एक कहूँ तो है नहीं , दो कहूँ तो झूंठ ,

तीन कहूँ तो क्या नहीं, जो वो है मैं वही

एक जो है वो शब्द हो जाता है. एक शब्द का भी मौन अवस्था में ख्याल नहीं रहता. एक या दो का ज्ञान सुषुप्त अवस्था में नहीं रहता है.

अच्छी तरह समझ लीजिये कि जिन्होंने साधना करनी है ऐसी स्थिति उनकी भी होनी चाहिए. परन्तु यह अवस्था धीरे-धीरे आती है, एक दिन में नहीं आती. उतावला नहीं होना चाहिए. परन्तु हमारा ध्येय हमारे सामने होना चाहिए कि हमें भी उस स्थिति तक पहुंचना है जहां आप, आपके गुरु और परमात्मा सब एक हो जाएँ. यह है सहज समाधि की अवस्था.

सहज समाधि का दूसरा अर्थ है - संतोष. भगवान कहते हैं कि मेरा जो प्रेमी है वो मुझे इसलिए भी प्रिय है कि उसमें एक गुण विशेष है - और वो गुण है संतोष. संतोष का अर्थ है कि परमात्मा ने जितना धन दिया है, जिस स्थिति में रखा है, उसी में वह संतुष्ट है और कहता है कि परमात्मा की बड़ी कृपा है. सुःख मिलता है तो कहता है, ठीक है और जब दुःख मिलता है तो भी कहता है यह भी ठीक है. तो यहां सहज समाधि का अर्थ है कि संसार में जो कुछ हो रहा है, या जो कुछ मेरे भीतर में हो रहा है उसकी प्रतिक्रिया नहीं करनी है. बुरे को बुरा नहीं कहना है, भले को भला नहीं कहना है. यदि ईश्वर की कृपा ऐसी है तो ऐसा ही सही.

ऐसा साधक प्रत्येक अवस्था में आनंदमग्न रहता है. किसी ने थप्पड़ लगा दिए तो कोई प्रतिक्रिया नहीं, किसी ने कटु वचन बोल दिए तो भी शांत. वो सदा सहज अवस्था में रहता है. संसार में कोई बुराई हो रही है, तो ठीक है. कोई नेकी हो रही है, तो भी ठीक है. परन्तु यह भी देखें कि हम क्या करते हैं ? यदि कोई दुर्घटना होती है तो हम तुरंत ही अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करनी शुरू कर देते हैं. सुबह दैनिक समाचार पत्र पढ़ते हैं जिसमें भिन्न-भिन्न प्रकार की खबरें होती हैं, भिन्न-भिन्न पार्टियों के अपने विचार होते हैं, तो जैसे हमारे विचार होते हैं उसके अनुसार हम अपनी प्रतिक्रिया करने लगते हैं.

सहज समाधि में व्यक्ति मौन रहता है या बहुत कम बोलता है. उसके लिए तो जो हो रहा है, ठीक है. वह सदा सहज अवस्था में रहता है. समाधि का अर्थ यह है कि आपको आत्मा का आनंद हमेशा मिलता रहे. जो कुछ हो रहा है, वो भगवान की लीला से हो रहा है. वो भगवांन की प्रत्येक लीला को देखे तो सहज अवस्था में और उसी सहज समाधि में आनंदित होता रहे.

जब आप सहज समाधि में आ जाते हैं तो आप अपने आप ईश्वर के चरणों में चले जाते हैं. आपकी आत्मा और परमात्मा के बीच में जो शरीर और मन , बुद्धि आदि ने पर्दा खड़ा किया हुआ है वो सब दूर होकर आत्मा परमात्मा एक हो जाते हैं.

जहँ-जहँ डोलौं सो परिकरमा, जो कछु करों सौ सेवा

जब सोचौं तब करौं दंडवत , पूजौं और न देवा

यह हमारे यहां की पुरातन संस्कृति है कि जब हम गुरु की पूजा करते हैं तो उनके चारों ओर घूमकर परिक्रमा लेते हैं .जब हम गुरुद्वारों या मंदिरों में जाते हैं तो वहां भी यही करते हैं. यह सहज होने का हमारा सनातन तरीक़ा है. कबीर साहब यही बता रहे हैं कि मैं जहाँ-जहाँ क़दम उठाता हूँ या परिक्रमा करता हूँ - इसका अर्थ है कि मैं ईश्वर को हर जगह हाज़िर-नाज़िर मानता हूँ ओर उनकी परिक्रमा करता हूँ, वहीं मेरा ईश्वर व्यापक है वहीं मेरा ईश्वर सर्वव्यापी है, वही मेरा सब कुछ है - यही श्रद्धा के फूल मैं उनके चरणों में चढ़ाता हूँ . हाँ, जो कुछ मैं हाथ-पैरों से करता हूँ, शब्दों से करता हूँ, मन से करता हूँ, वो मेरी ईश्वर की पूजा है.

हमें भी अपने काम को पूजा का रूप देना चाहिए. भगवान कृष्ण ने जो कर्मयोग में लिखा है वह यही है कि जो भी करो, ईश्वर की हज़ूरी में करो. जो पूजा करें वो भी ईश्वर की कृपा प्राप्त करने के लिए करें. खाएं भी तो उसके लिए खाएं . किसी की सेवा करें तो ईश्वर की सेवा समझ कर करें.

कबीर साहब जो खादी बुनते थे, वो ईश्वर के लिए बुनते थे. वो जो कपडा बुनते थे उसका जो पैसा बाजार में मिलता था उसका आधा गरीबों में बाँट देते थे ओर आधा अपने पास रखते थे. वो हर काम उसी ईश्वर के लिए करते थे.

जब सोवौं तब करौं दंडवत

पूजौं और न देवा

कहौं सौ नाम , सुनौं सो सुमिरन

अगर मैं अपनी खाट पर जाऊं सोने के लिए, तो ईश्वर के चरणों में सर रखकर दंडवत करके सोऊँ, यही मेरी पूजा है. मेरा कोई और देवता या इष्ट नहीं है. मैं जो भी शब्द इस्तेमाल करूँ वो ईश्वर स्तुति में हों, ईश्वर के प्रति हों. कोई आलोचना न हो. कबीर जब भी लोगों से बात-चीत करते थे तो कहते थे कि मैं यह सब ईश्वर के प्रति कह रहा हूँ, ईश्वर को सम्बोधन कर रहा हूँ. सब पूजा के रूप में कर रहा हूँ. जब भी कोई व्यक्ति मेरे पास आता है तो ईश्वर के रूप में आता है. कबीर साहब कहते हैं जब मैं किसी के साथ व्यवहार करता हूँ तो किसी व्यक्ति विशेष से नहीं, मैं तो अपने ही राम के साथ व्यवहार करता हूँ.

' खाऊँ, पीऊं सो पूजा ' .

जब मैं खाना खा रहा हूँ तो वो भी ईश्वर की पूजा कर रहा हूँ, कोई पेट पूजा नहीं कर रहा- यानी ईश्वर का प्रसाद समझ कर, कृत्यज्ञता में आनंदित होकर. जो भी खाना मेरे भीतर जाता है उसे मैं प्रसाद समझ कर आनंदित और कृत्यज्ञ होता हूँ.

ये सब पूजा के रूप हैं. हमें भी इसका दर्शन समझना है. अपने जीवन को ऐसा बनाना है . जब हम किसी से झगड़ा करते हैं, तो ईश्वर से झगड़ा करते हैं, किसी से प्यार करते हैं तो ईश्वर से प्यार करते हैं यानी कण -कण में ईश्वर को देखें, प्रत्येक व्यक्ति में ईश्वर को देखें. प्रत्येक परिस्थिति को ईश्वर की लीला समझें.

' गृह उजाड़ सब एकै लेखौ '

मैंने सब दुनियां को छोड़ दिया. मेरे लिए तो मेरा प्रीतम साँवरा कृष्ण है. भगवान राम मेरा ईश्वर है. हमारी दृष्टि ऐसी बन जाना चाहिए - बाहर की दृष्टि भी और भीतर की दृष्टि भी. जब तक ऐसा भीतर नहीं बनेगा, तब तक बाहर की दृष्टि भी ऐसी नहीं बन सकती. उनकी पवित्र वाणी के मनन की आवश्यकता है. इतनी सहजता से समझ में नहीं आएगी. इसे सचमुच ग्रहण करने में बहुत तपस्या करनी पड़ेगी.

आँख न मूँदौ , कान न रूंधौ

तनिक कष्ट नहि धारौं .

अब कबीर जी सहज समाधि की बात कर रहे हैं. क्या ज़रूरत है कि आँख बंद करके तीन -तीन घंटे बैठे रहें ? क्या ज़रूरत है कि भीतर में झांकें या बाहर में झांकें ? अब मुझे और कुछ करने की क्या ज़रूरत है ? जैसा कि मैनें शुरू में कहा कि कुछ ना करना भी बहुत कठिन साधन है. इसी को कबीर साहब कहते हैं क्या ज़रूरत है कुछ करने की. मेरे प्रीतम की वाणी मेरे हृदय में जाग्रत है, सब जगह वही वो है, वही वो है.

खुले नयन पहचानौं हँसि-हँसि,

सुन्दर रूप निहारौं

मुझे आँख बंद करके भीतर जाने की ज़रूरत नहीं है. हम ईश्वर की अनुभूति अपने अंदर में करते हैं. भगवान की लीला के मुझे खुली आँखों दर्शन हो रहे हैं. ये जो कुछ हो रहा है, भगवान की रास लीला है. भगवान के भी दर्शन हो रहे हैं, भगवान की रासलीला के भी दर्शन हो रहे हैं. उसका रूप कितना सुन्दर है, कितना आकर्षक है ? मुझे इतना मोहित कर लेता है कि क्या वर्णन करूँ ?

शब्द निरन्तर मनुवां उचरत,

मलिन वासना त्यागी.

यानि भीतर में वही आत्मा हर समय निरन्तर शब्द कर रही है, बोल कुछ नहीं रही. भीतर में जो मलिन वासनाएं होती हैं, जो हमें दुःख देती हैं, वो सब छूट गयी हैं. अगर मैं सबमें ईश्वर के दर्शन कर रहा हूँ तो उस नबाब में जिसने मुझे गंगा में बहाया था,उसमें भी मैने ईश्वर के दर्शन किये, मुझे तो कोई भी शत्रु नज़र नहीं आया. मुझे तो सबमें भगवान नज़र आते हैं .

कहैं कबीर ये उनमनि रहनी

सो परगट करि गाई.

यह साधना की उच्चतम प्रगति है, शिखरता है. संसार के लाभ के लिए ऐसे महापुरुष प्रायः चुप हो जाते हैं. किसी योग्य सुपात्र साधक से बात करते हैं तो भी संक्षेप ही में, ज़्यादा बात नहीं करते .पर कबीर साहब ने तो सारे विश्व के लिए कह दिया ताकि लोग उस रास्ते पर चलकर ईश्वर के चरणों में लगें . ये कठिन साधना नहीं है. राम नाम लेकर सबको लाभ हो सकता है तो उन्होंने अपनी आंतरिक शक्ति सबको वर्णन कर दी.

दुःख सुख से कोई परे परम् पद

सोई पद रहा सागाई

अपनी इस ' भली सी सहज समाधि ' की व्याख्या के अंत में कबीर जी यही कहते हैं कि संसार के सुःख-दुःख छोड़कर, मैं तो अब उसी 'परमपद' में समा रहा हूँ जो दुःख-सुःख सबसे परे है. यही साधना का सारांश है. संत कबीर की सहज साधना का सम्पूर्ण रहस्य उन्होंने इसी एक महान पद में कहकर ' गागर में सागर ' जैसा महत्वपूर्ण ज्ञान दिया है.

राम सन्देश : मई-जून 2000

सावधान ! समय थोड़ा है और मानव चोला अमूल्य है

मानव शरीर ही एक ऐसा उपकरण है जिसके बिना आत्मा या परमात्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता. इस शरीर को पाने के लिए देवतागण भी ईश्वर से प्रार्थना करते रहते हैं कि उन्हें मनुष्य चोला मिले ताकि वे मोक्ष का साधन कर सकें. केवल इस मनुष्य शरीर रुपी उपकरण से ही आध्यात्मिकता का साधन हो सकता है.

यह मनुष्य शरीर जो हमें ईश्वर कृपा से प्राप्त हुआ है, उसका हमें सदुपयोग करना चाहिए. परन्तु मनुष्य ने इसे आलसी बना दिया है, यह मोहग्रस्त हो रहा है.अपने मन और इन्द्रियों के सुख में फंसा हुआ है. यदि वह कुछ मन से विचार करने लगता है तो मन के विचारों में जल्दी फँस जाता है - जैसे कि परमात्मा को यह क्या सूझा कि उसने यह सृष्टि बनाई, पाप-पुण्य और जन्म-मरण के सुख-दुःख बनाये, आदि. ऐसी बातों में वहअपना समय व्यर्थ खोता रहता है. डॉ ए. के . बैनर्जी साहब का यह कथन कितना सही मार्दर्शन करता है: " all intellectual discussions and queries about subtle and abstract subjects are futile exercises “ (अर्थात पराज्ञान सम्बन्धी सूक्ष्म तथा गंभीर विषयों पर पर वाद-विवाद और बौद्धिक चर्चाएं करना महज़ बेकार की कसरतें हैं.)

कबीर साहब ने कहा है कि पढाई से बुद्धि का विकास और फिर आध्यात्मिक साधना तो बचपन से ही शुरू कर देना चाहिए. यदि किसी कारण से बचपन निकल गया, युवा अवस्था आ गयी है, तो होश आ जाना चाहिए. युवा अवस्था भी निकल गयी, जरा यानी बुढ़ापा आ गया है, मृत्यु सामने दीखती है, तब भी हमको होश आ जाना चाहिए. तब भी कुछ नहीं किया, यमराज के दूत आ गए हैं, कबीर साहब कहते हैं अब तो कुछ कर लो. लेकिन उस वक्त मनुष्य से कुछ होता नहीं क्योकि उसका स्वभाव ऐसा बन चुका होता है कि वह शरीर से भले ही दुखी हो, आर्थिक कठिनाइयां हों, संसार जूते लगाता हो, फिर भी वह संसार में इतना मोहग्रस्त हो चुका होता है कि मरना नहीं चाहता, और अब विवश है कि कोई अन्य साधन भी नहीं कर सकता.

कोई व्यक्ति मरना नहीं चाहता है. ऐसी कई कहानियां हैं. पूज्य संत शिवव्रत लालजी ने एक बड़ा रोचक शिक्षाप्रद दृष्टांत लिखा है : एक मुसाफिर जंगल से गुज़र रहा था, पीछे से एक शेर उसे पकड़ने के लिए आया. उस मुसाफिर ने पास में ही एक कुआँ देखा. उसने उस कुएं में छलांग लगा दी. किसी तरह कुँए में लगे हुए एक वृक्ष की शाखा उसके हाथ लग गयी. वह उसे पकड़ कर कुँए में लकट गया. क्या देखता है कि नीचे एक मगरमच्छ मुंह खोले उसके गिरने के इंतज़ार में हैं. ऊपर दो चूहे हैं - एक सफ़ेद और एक काला. वे उसी डाल को काट रहे हैं. परन्तु बृक्ष में लगे मधुमखी के छत्ते में से शहद की बूँदें गिर रही हैं जो उसके मुंह में जा रही हैं. वह व्यक्ति कितनी मुसीबत में घिरा है, उसे हर तरफ मौत दिखाई दे रही है. समय व्यतीत होता जा रहा है. दिन और रात रूपी चूहे उसकी आयु को निरन्तर काट रहे हैं. वह देख रहा है कि

ऊपर से चूहे डाल काट देंगे तो वह तुरंत नीचे गिर जायेगा. किन्तु इन बातों का उसको जरा भी ख्याल नहीं है. वह मूर्ख ऊपर से टपकती हुई मधु की कुछ बूँदों के रसास्वादन में लगा है.

महात्मा शिवव्रत लाल जी ने इस रूपक द्वारा यह बतलाया है कि चूहे क्या हैं, नीचे मगर और जल क्या है, पेड़ क्या है, आदि. ये जो चूहे हैं वह आयु है, समय है. चूहों का काम है काटना, वे हर वस्तु को काटते रहते हैं. हमारी आयु कट रही, घट रही है. मगर का मुँह मृत्यु का रूप है, हमें किसी भी समय उसमें गिरना है. यह जो जंगल है,वह संसार है जहां चारों ओर खतरे, आशंकाएं और उत्तेजनाएं हैं, कोई सुख नहीं, फिर भी मनुष्य को होश नहीं है. वह शहद रुपी क्षणिक सांसारिक सुखों के आनंद में लिप्त है.

इस शरीर के बदलने में ओर दूसरा शरीर धारण करने में, जिसको हम मृत्यु कहते हैं, उससे सब लोग डरते हैं. हर व्यक्ति यह जानता हैं कि मृत्यु तो आनी ही है, यह जीव एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करेगा. परन्तु फिर भी व्यक्ति मृत्य से डरता है. कैसी यातनाएं मिलेंगी, कैसी मृत्यु होगी ? सुख की कोई नहीं सोचता, सब दुःख की ही सोचते हैं. मन में पाप भरे होते हैं. इंसान अगर सोचने लगे कि बचपन से लेकर अब तक मैंने कितनी ग़लतियां की हैं तो वह पागल सा हो जाता है, मौत के वक्त अपने जीवन भर की बुराई-भलाई की बातें सामने आती हैं. इसलिए व्यक्ति मौत से घबराता है .

गुरुदेव भी ऐसी ही एक कहानी सुनाते थे. विष्णु भगवान ने नारद जी से कहा कि " वैकुण्ठ में खाली स्थान है. आप मृत्यु लोक यानी संसार में जाइये ओर वहां से कुछ अच्छे लोगों को यहाँ ले आइये, उनको यहां सुख मिलेगा." नारद जी गए . गर्मी खूब पड़ रही थी . एक व्यक्ति भारी गठरी उठाये हुए है, उसे ठीक से ले जा भी नहीं पा रहा है और कह रहा है कि ' हे प्रभु, तू बड़ा अन्यायी है, तेरे घर न्याय नहीं है. इतना दुखी हूँ मैं, तू मुझे मौत ही दे दे. मरने के बाद तो ये दुःख नहीं उठाने पड़ेंगे, न घर के व्यक्ति होंगे जिनके कारण मुझे यह सब सहन करना पड़ रहा है. ' इत्यादि. नारद जी ने सोचा यह व्यक्ति संसार से ऊब चुका है, चलो हम इसको बैकुंठ में ले चलते हैं. उन्होंने उस व्यक्ति से कहा - " भाई, तुम घबराओ नहीं, मैं तुम्हे बैकुंठ में लिए चलता हूँ. वहां तुम्हे हर प्रकार का सुख मिलेगा ."

वह व्यक्ति नारद जी से कहता है कि " भगवन, आपकी बड़ी कृपा है जो आप मुझे बैकुंठ में ले जाने के लिए प्रेरित कर रहे हैं, परन्तु मेरे ऊपर बच्चों के कुछ दायित्व हैं, वे अभी छोटे-छोटे हैं, जब वे बड़े हो जाएँ, आप आइयेगा, मैं आपके साथ प्रसन्नता पूर्वक चलूँगा." कुछ समय बाद नारद जी पुनः आये. तब तक उसके बच्चे जवान हो चुके थे ओर वह व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त कर बैल बन गया था.

नारद जी ने उस बैल से कहा - " अब तो तू चल ". तो उसने उत्तर दिया - " महर्षि, मेरे ये बच्चे बड़े प्रमादी हैं. यदि मैं खेत नहीं जोतूँगा, तो क्या होगा, खेती नहीं होगी ओर ये भूंखे मर जायेंगे.आप कुछ दिन ओर प्रतीक्षा कीजिये. तब तक इन लड़कों को कुछ समझ आ जाएगी. " नारद जी फिर वापस चले गए.

नारद जी फिर जब तीसरी बार आये तब तक बैल मर चुका था. वह व्यक्ति कुत्ता बना बैठा था नारद जी ने कहा - " अरे अब तो तू चल मेरे साथ. कैसी कुत्ते की योनि में फंसा है ?गंदगी खाता है, दुर्दशा में पड़ा है." तो वह व्यक्ति बताता है कि " बच्चे अपनी सम्पति को संभाल नहीं सकते इसलिए मैं यहां पड़ा रखवाली करता रहता हूँ. कुछ और समय ठहरिये . " नारद जी कुछ समय बाद जब आये तो वह कुत्ता भी मर चुका था. उन्होंने अपनी ज्ञान-दृष्टि से देखा तो पाया कि सड़ी हुई गन्दी नाली में एक कीड़ा पड़ा हुआ - यह वही व्यक्ति था - कीड़े की इस नई योनि की शोचनीय अवस्था में. नारद जी कहते हैं - " अरे, तू कहाँ पड़ा सड़ रहा है. चल मेरे साथ, तेरी दुर्दशा की हद हो गयी है. " तो वह व्यक्ति क्या कहता है " भगवन, आप मेरे ही पीछे क्यों पड़े हैं ? क्या आपको अभी तक कोई अन्य व्यक्ति नहीं मिला जो बैकुंठ में जाने लायक हो और आपके साथ चला जाये. "

यह हम सबकी अवस्था है. हम सोचते हैं कि यह काम और लें, वह काम रह गया उसे भी पूरा कर लें. इसी में हमारी मृत्यु आ जाती है, दुखों में रहते हुए. हम दुखों से घबराते भी हैं परन्तु चेतते नहीं और न कोई ऐसा साधन करते हैं जिसके फलस्वरूप हम अपने जीवन को सुधार कर ईश्वर के चरणों में स्थान पा सकें और सच्चे आनंद की प्राप्ति करें.

तो पहला काम है ' सचेत ' हो जाना. यह साधना का श्री गणेश है. परन्तु गुरु की कृपा के बिना साधक पूर्णतः सचेत नहीं हो पाता, जाग्रत नहीं हो पाता. एक तो साधारण निंद्रा है और एक माया की निंद्रा है जिसमें हम फंसे हुए है. जान बूझ कर फंसे हुए हैं. एक मूढ़ व्यक्ति चाहे तो ऐसा करे क्योकि उसको कुछ समझ नहीं होती, लेकिन जो बुद्धिजीवी हैं. विद्वान हैं,सब कुछ समझते हैं, वे भी माया में फंसे हुए हैं. माया भी कई प्रकार की है - धन -सम्पति सब माया है, स्त्री-बच्चे, सगे - सम्बन्धी, आदि भी माया हैं. हमारे भीतर में जो विचार उठते रहते हैं वे भी माया का ही रूप हैं. अधिकतर व्यक्ति अपने विचारों में ही उलझा रहता है. इस माया से छूटना मुश्किल है, बहुत ही कठिन है.

हम संध्या में बैठकर उपासना करते हैं - कहते हैं कि साहब क्या करें ? विचार आते रहते हैं. कैसे विचार आते हैं ? जब इसका उत्तर आता है तो स्पष्ट हो जाता है कि हम कहाँ फंसे हुए हैं. जीव भी बिचारा क्या करे - कमज़ोर है. अपने बलबूते से निकलना बहुत कठिन है. असम्भव नहीं, कठिन है. यदि हमारे भीतर में सच्ची जिज्ञासा उतपन्न हो जाती है, व्यक्ति सचेत हो जाता है, रोता है, तब संतजन कहते हैं " जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ ." हज़रत ईसा भी यही कहते हैं कि ' खोजोगे तो पाओगे '.

जब यह स्थिति आ जाती है तब भगवान की कृपा से कोई समर्थ व्यक्ति मिलता है जो अपना बल देकर हमें रास्ते पर लगा देता है. उसको हम 'गुरु' कहते हैं. वह हमारा मार्गदर्शन करता है, रास्ता बतलाता है कि हम किस प्रकार से माया-जाल से मुक्त हों. पाँचों जन्मों में यदि व्यक्ति आलस, प्रमाद को छोड़कर खोज करता रहे, सचेत होकर प्रभु के चरणों में रोता रहे, तब कहीं जाकर गुरु मिलता है. सच्चा गुरु जो होता है वह परमात्मा ही होता है. यह भी सच है कि गुरु और परमात्मा में कोई अंतर नहीं है.

इस गुरु वेश में संसार का जहां उद्धार हुआ है वहां पतन भी बड़ा हुआ है. विचित्र विडंबना है कि हज़ारों लोगों ने गुरूआई को धंधा ही बना लिया है. किसी की आलोचना करना उचित नहीं है, परन्तु सावधान करना भी एक फ़र्ज़ है. तो यदि गुरु मिल भी जाए तो उसकी पहिचान कैसे हो कि सच्चा गुरु कौन है, बनावटी गुरु कौन है ? इस पर कबीर साहब की वाणी बड़ी स्पष्ट है. उन्होंने सच्चे गुरु की पहिचान की मिसालें बतलाई हैं और दूसरे व्यक्तियों की भी पहिचान बतलायी है. सच्चा गुरु वही है जिसमें परमात्मा के वे गुण हों जो शास्त्रों में वर्णित हैं, जो हम महापुरुषों से सुनते आये हैं. ऐसे दिव्य गुण यदि उस व्यक्ति में हों तो हमें उसका दामन पकड़ लेना चाहिए. यहां कबीर साहब सावधान करते हैं कि हो सकता है कि परख करने में हमसे गलती हो गयी हो, तो सावधानी से काम लें .

जिस प्रकार गुरु शिष्य की परीक्षा लेता है उसी प्रकार शिष्य को भी अधिकार है कि वह गुरु की परीक्षा ले. सच्चा गुरु ऐसे पता लगेगा कि उसके पास बैठने से हमें शांति मिलती है या नहीं, हमारा मन एकाग्र होने लगता है कि नहीं, उसके पास बैठने से हमें प्रेरणा मिलती है कि नहीं कि हम अपनी बुराइयां छोड़े, और उनके पास बैठने से वे बुराइयां छूटती भी हैं कि नहीं. जब तक भीतर से बुराइयां नहीं छूटेंगी, विकार दूर नहीं होंगे, मन स्थिर नहीं रहेगा, शांत नहीं होगा. आप चाहे जितनी उपासना करते रहें, आपको अपने स्वरुप का, गुरु के वास्तविक रूप का या परमात्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता.

सच्चे गुरु के संपर्क में आने से आपके विकार छूटने चाहिए . जैसे दर्पण के सामने शक्ल दिखाई देती है, उसी प्रकार से उस महान व्यक्ति के पास बैठने से क्या हमें अपने दोष दिखते हैं या हमारा मन शांति, आनंद और सुख की अनुभूति करता है. यदि ऐसा है तो समझ लेना चाहिए कि यही व्यक्ति है जो हमारा आदर्श बन रहा है, जो ईश्वर प्राप्ति में हमें सहायक हो सकता है. और आगे बढिये. देखिये कि वह व्यक्ति धन-दौलत अथवा मान-सम्मान का भूखा तो नहीं है ? हाथ-पाँव की सेवा कराने का इच्छुक या लालची तो नहीं है. स्वयं माया में ग्रस्त तो नहीं है. उसका जीवन वास्तव में सबके साथ आदर्श व्यवहार का है या नहीं ? गुरु महाराज कहा करते थे कि यदि हमें बाज़ार से कोई सामान खरीदना होता है तो हम दस दुकानें देखते हैं, सौदा परखते हैं, यह देखते हैं कि कौन सी दुकान पर सौदा अच्छा और सस्ते दामों में मिलता है. जहां ये बातें पूरी होती हैं, हम वहीं से सौदा खरीदते हैं. तो ऐसे ही गुरु करने से पहले गुरु की पहचान कर लेनी चाहिए, इसमें कोई हर्ज़ नहीं है.

किन्तु एक बार गुरु धारण करके उसमें पूर्ण श्रद्धा और विश्वास ले आना चाहिए. सभी संतों ने ईश्वर की तुलना में गुरु का दर्ज़ा बड़ा बताया है क्योकि वह हमें ईश्वर से तदरूप करा देता है. कबीर साहब आदि संतों का यही विश्वास था कि गुरु के बिना ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो सकती. इसीलिए उन्होंने गुरु को मुख्य रखा .

संतमत और सूफ़ियों के सिलसिलों में तो गुरु-प्रणाली अनिवार्य है ही. गुरु का महत्व कितना अधिक है सो कबीर साहब के ' गुरु गोविन्द दोनों खड़े.....' वाले पद को देखें - उसमें उत्तर भी स्पष्ट है :-

गुरु गोविन्द दोनों खड़े , काके लांगू पाँय

बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दियों दिखाय

वास्तव में यह स्वरुप या शब्दों का ही हेर-फेर है - भाव तो एक ही है. गुरु और ईश्वर एक हैं. ईश्वर ही गुरु में पूर्ण रूप से समाया हुआ है. वो ही ईश्वर है. जैसे भगवान कृष्ण गीता में विश्वास दिलाते हैं कि जब भी संसार में असुंतलन बढ़ता है, परमात्मा स्वयं मनुष्यों के उद्धार के लिए आते हैं. ऐसी ही महान आत्माएं जो संसार के कल्याण के लिए आती हैं, वे ही गुरु का रूप धारण करती हैं.

हम बड़े सौभाग्यशाली हैं कि हमें मनुष्य चोला मिला, पढ़ने-लिखने का अवसर मिला और फिर आत्मिक उन्नति करने के लिए सच्चे गुरुजन का दिशा-बोध और श्रेष्ठ मार्गदर्शन भी प्राप्त हुआ. इसलिए अत्यन्त गंभीरता से स्व-निरीक्षण करें. हमने कितना वक्त गवां दिया है. समय का पहिया तो बहुत तीव्र गति से बढ़ता जा रहा है और यह चेतावनी दे रहा है कि इस जीवन का क्या भरोसा ? वक्त थोड़ा है. अब भी चेत जाएँ. हमें चाहिए कि हम जागरूक होकर हर घडी समय का पूरा-पूरा लाभ उठाने में निरन्तर लगे रहें.

राम सन्देश - मार्च-अप्रेल 2001

स्तुति करें तो ईश्वर की या गुरु की, निंदा करें तो अपने अवगुणों की

गुरु तेग बहादुर जी की एक सुन्दर शब्द रचना है - " साधो मन का मान त्यागो " - ये पंक्तियाँ बहुत ही सार्थक उपदेश दे रही हैं.

स्तुति निन्दा दोऊ त्यागें, खोजै पद निरवाना

स्तुति और निन्दा हमारे जीवन को हर समय प्रभावित करने वाले दो शब्द हैं. स्तुति करनी है तो परम पिता परमात्मा की करो और निन्दा करनी है तो अपनी करो. दैनिक व्यवहार में अपने विचारों को देखिए. हम प्रतिक्षण दूसरों की निन्दा करते रहते हैं, हो सके तो हम दुर्व्यवहार भी करते हैं. ऐसा व्यक्ति यदि चाहे कि वो परमार्थ में सफल हो जाये तो यह अपने आप को धोखा देने वाली बात है. सत्संग में भी भाई आते हैं, कहते हैं हमें २०-२५ साल हो गए पर अब तक हमें प्राप्ति क्या हुई ? इसी प्रकार का पत्र एक भाई का मिला, मैंने उनसे पूछा " तुमने छोड़ा क्या है इन २५ सालों में " ? .

आत्मा के ऊपर आ वरण चढ़े हैं जिनके परिणाम स्वरुप हम अपने वास्तविक स्वरुप को नहीं देख पाते हैं. साधना करने का मतलब यही है कि हम कोई भी पद्धति अपनायें, चाहे सत्संग में जाएँ, मंदिर, मस्जिद, गुरूद्वारे में जाएँ , महापुरुषों की सेवा में जाएँ अथवा धर्मग्रन्थ पढ़ें, इस सब का परिणाम यह होना चाहिए कि हमारी आत्मा के ऊपर जो आवरण पड़े हुए हैं उनसे हम इसी जीवन में मुक्त हो जाएँ. यही मुक्ति है. जिसको इन गिलाफ़ों (आवरणों) से मुक्ति जीते जी नहीं मिली, जिसने निर्वाण की अनुभूति नहीं की है वह यह चाहे कि उसको शरीर छोड़ने के बाद मुक्ति मिलेगी तो यह अपने आप को धोखा देना है.

गुरुवाणी का एक बड़ा सुन्दर भजन है - गुरु चरणों को छुओ, यदि जीवन का लक्ष्य प्राप्त करना है तो गुरु के चरणों को छुओ. गुरु के चरण केवल शरीर के चरण नहीं हैं (लाभ इनको छूने से भी होता है) किन्तु गुरुवाणी में जो संकेत है उसके अर्थ यह हैं कि गुरु के आत्मिक गुणों को अपने रोम-रोम में बसा लो. आप जब तक गुरु के आत्मिक गुणों को अपनाएंगे नहीं और अपने अनात्मिक गुणों त्यागें नहीं, तब तक कुछ नहीं होगा.

इसलिए पूज्य गुरुदेव (डॉ. कृष्ण लाल जी महाराज) कहते रहे हैं कि यदि तुमको स्तुति करना है तो परमात्मा की करो. यदि कोई सच्चा गुरु मिल जाये,कोई सच्चा मित्र मिल जाये तो उससे मित्रता कर लो. और यदि निन्दा करनी है तो अपने अवगुणों की करो. अपना स्वनिरीक्षण (introspection) करो. हम दूसरों के दोष देखते है, अपने दोष कोई नहीं देखता. यह प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव है. हमारे यहां की साधना की विशेष बात यही है कि हम स्वनिरीक्षण करें, अपने दोष देखें और उनको त्यागें.

सन्यासी को जब सन्यास की दीक्षा दी जाती है तब उसके सिर के सारे बाल मूंड दिए जाते हैं. एक बाल भी नहीं रहने दिया जाता है, अर्थात जब उसमें एक भी दोष नहीं रह जाता, वह अग्नि स्वरुप हो जाता है, तब उसको अग्नि-रूप गेरुवे वस्त्र पहिना दिए जाते हैं. उससे पहले गेरुवे वस्त्र पहिनने का अधिकार किसी को नहीं है. हमारे शास्त्रों के अनुसार सन्यास की दीक्षा तब तक नहीं दी जाती जब तक उसके भीतर में से अवगुणों का विनाश नहीं हो जाता. परन्तु अब तो कोई भी व्यक्ति सन्यासी बन जाता है. यह समय का दोष है, हमारी अपनी कमज़ोरी है - शास्त्रों का दोष नहीं है.

इसी तरह हम भी सत्संग में आकर सत्संगी तो कहलाते हैं परन्तु हम गुरु महाराज की बातों पर मनन नहीं करते हैं. गुरु में पूरी आस्था न हो तो उनकी संगति न करें. पर आपको जिस धर्मगुरु पर विश्वास है या जिस रीति पर, जिस शास्त्र पर, जिस ग्रन्थ पर आपको विश्वास है उसके अनुसार चलिए. उसके अनुसार चलना ही उस महापुरुष के चरणों में अपने शीश को रखना है. हम गुरु के चरण छू कर अपने आप को धोखा देते हैं और गुरु को भी धोखा देते हैं. इस बात पर मुझे दुःख होता है, इससे बेहतर है कि दिखावा न करें .

गुरु नानक देव जी ने दो शब्दों में बता दिया है कि स्तुति करने का मतलब क्या है :

तू तू करता तू भया , मुझ में रही न हूँ ,

आपा अपना मिट गया , जत देखूं तत तू .

गुरु या ईश्वर की स्तुति करने का मतलब है - ' तू तू करूँ ' अर्थात कोई सा नाम लूँ - राम कहूँ, रहीम कहूँ, सतनाम कहूँ, अल्लाह कहूँ - सब एक ही बात है. संत कबीर का जीवन कितना सीधा-सादा था. उनकी माँ कहा करती थीं - इसने तो सब काम छोड़ दिया. माता-पिता जिन्होंने कबीर साहब को अपनाया था वे जुलाहे थे तो उन्होंने कबीर को जुलाहे का ही काम सिखाया. जब कबीर मस्ती में आते थे तो सब छोड़ देते थे - सुई कहां है, धागा कहां है, कपडा कहां है - उन्हें किसी बात की सुध नहीं रहती थी. माँ को बड़ा कष्ट होता था कि यदि यह अभी काम नहीं करेगा तो आगे चलकर हमारे बाद इसका गुज़ारा कैसे होगा. तो माँ के विचार कबीर साहब वर्णन कर रहे हैं और उत्तर भी दे रहे हैं कि - " मुझे करने की क्या ज़रूरत है, मेरा सच्चा पिता, वो मेरा राम ही मेरी देखभाल करेगा, मुझे क्या चिन्ता है." यह है विश्वास, ईश्वर के प्रति, गुरु के प्रति विश्वास. हम भी रोज़ पाठ-पूजा करते हैं पर क्या हमारे भीतर में इतना विश्वास है .

गुरु के, ईश्वर के चरणों में माथा टेकने का सही मतलब यही है कि हम अपने अहंकार को उनके चरणों में अर्पण कर दें . हम अपने मन की बुराइयों को उनके चरण रुपी गंगा में बहा दें. उनके सदवचनों की प्रसादी लें, उनकी निर्मलता लें, उनके गुणों को अपनाये और कबीर साहब के शब्दों में हम वैसे ही हो जाएँ. वास्तव में हम वैसे ही हैं भी पर अहंकार के कारण हम समझते हैं कि हम शरीर हैं, हम मन हैं , या हम बुद्धि हैं. कोई समझता है कि मेरी बुद्धि बड़ी तीव्र है , मैं तो अपनी बुद्धि के चातुर्य से दूसरों को प्रभावित कर लेता हूँ . ये सब मन की बातें रास्ते की रूकावट हैं, अहंकार है .

अहंकार कम करने का साधन है दीनता अपनाना. दीनता है अहं भाव को छोड़ना. दीनता यह नहीं कि किसी से काम निकलने के लिए दो-चार मीठी-मीठी बातें कर लीं. यह सूक्ष्म अहंकार है. असली दीनता अपनाना और अहंकार त्यागना यह है कि आत्मा के ऊपर जो आवरण पड़े हुए हैं, जो आपके बंधन हैं, उनसे मुक्त होना है. दीनता है अपने पृथक अस्तित्व का त्याग करना. अपनी आत्मा को परमात्मा में मिला देना. क्योकि परमात्मा और हमारी जीवात्मा एक है. वैज्ञानिक भी मानते हैं कि ' life is one ' . वो अपने तरीके से ठीक हैं और जो इस रास्ते पर चलने वाले परमार्थी हैं, वे भी यही कहते हैं ' God is one ' . ये जितने रूप नज़र आते हैं वे सब हमारे मन के दिए हुए है . सब प्रकृति के द्वारा निर्मित (created) हैं. प्रकृति में भिन्न-भिन्न प्रकार के तत्व हैं जो आपस में मिलते हैं और अगणित विभिन्न रूप बना देते हैं.

साधना यही करनी है कि हम इसी जीवन में अपने सच्चे स्वरुप को पहिचानें और पहिचान कर वैसे ही बन जाएँ. शंकराचार्य जी भी कहते हैं 'तत्वमसि ' - तुम तो वही हो (जो कि "वह' है). गुरु की शरण लेकर यही बात सीखनी है कि हम उनके गुणों को अपनाएं, उनके रूप को अपनाएं. पूज्य गुरुदेव जो बात कहते हैं, संक्षेप में वह यही बात है कि स्तुति करनी है तो प्रभु की करो, अपने गुरु की, अपने इष्ट की या महापुरुषों की करो. सच्चा साधक तो कभी भी किसी की निन्दा या प्रतिक्रिया नहीं करता . उसके लिए सभी एक समानहैं क्योकि सभी तो परमात्मा के विविध रूप हैं.

महापुरुष तो यहां तक कहते हैं कि हमें दुश्मन में भी परमात्मा के दर्शन होने चाहिए . हज़रत ईसा को जॉन ने फांसी पर चढ़ाया. जब हज़रत ईसा का ईस्टर के दिन पुनर्जन्म हुआ और उनकी जॉन से भेंट हुई तो जॉन डर गया कि ये (क्राइस्ट) कहाँ से आ गए - यह तो उसका भूत आ गया है. हज़रत ईसा ने फाँसी पर चढ़ते हुए भी प्रभु से प्रार्थना की थी कि - ' हे प्रभु ! इन लोगों का दोष नहीं है , ये अज्ञानी हैं , ये नहीं समझते कि वे क्या कर रहे हैं . परमात्मा तुन इनको माफ़ कर दो, हे दयालु ! इन्हें माफ़ी दे दो '. पुनर्जन्म के बाद तीसरे दिन जब हज़रत ईसा की जॉन से भेंट हुई तो वह घबरा गया. हज़रत ईसा ने उसका आलिंगन करके कहा- भाई ! डरो मत मैं वही हूँ, भूत नहीं हूँ. मैं तो आत्मा हूँ. वो आत्मा तेरे भीतर में भी है, तू मेरा ही रूप है . वह दुश्मन जिसने उन्हें फांसी पर चढ़ाया था उसका ईसा आलिंगन कर रहे हैं. हमें इसी तरह प्रभु का रूप बनना है - यह है चरण छूने का अर्थ.

हम सब कहते हैं कि हमने क्या हासिल किया - अभी तक हमारा मन नहीं लगता. मन नहीं लगने का कारण क्या है ? स्पष्ट है कि हम एक रस्मी तौर पर पूजा करते हैं, हम मनन नहीं करते. मैं बार-बार कहता हूँ थोड़ा पढ़ो और मनन करो. बेशक पूजा थोड़ी करो. परन्तु चार-पांच मिनिट रोज़, नहीं तो सप्ताह में, महिने में, कभी- न कभी, मनन पर ज़रूर थोड़ा समय देना चाहिए. कम से कम इतना ही सोचो - मैं कौन हूँ ? प्रवचन पढ़ लिया या सुन लिया थोड़े समय के लिए आनंद आगया. यह तो कोई विशेष बात नहीं हुई . मनन करें कि मैं कौन हूँ. मैं आत्मा हूँ. मनन करने पर अवश्य ध्यान आएगा - ये शरीर मैं नहीं हूँ, प्राण नहीं हूँ, मन नहीं हूँ, बुद्धि भी नहीं हूँ, आनंद भी नहीं हूँ. मैं तो ईश्वर हूँ, परम पवित्र परमात्मा हू , आत्मा हूँ . पर केवल ऐसा कहने से काम नहीं होगा, यह ज्ञान तो प्राप्त करने से होगा. जब आप मनन करेंगे

तो आपके भीतर में रास्ता भी खुलता जाएगा. आपके गुरु ने साधना करने का जो रास्ता आपको बतलाया है उसके महत्व को, उसके सार को समझें . केवल राम-राम कहने से कुछ नहीं होगा.

एक प्रसिद्ध उदाहरण दिया जाता है कि अजामिल ने एक बार नाम लिया तो उसका उद्धार हो गया. हम यह नहीं सोचते कि उसकी जीवन भर जो आत्मिक प्रगति होती रही होगी - एक नहीं कई जीवनों से - उसके परिणामस्वरूप जब भीतर में उसके विकार ख़त्म हो गए होंगे उस समय, उसके अंतिम समय में. उसने प्रभु का नाम लिया और तब उसका उद्धार हो गया. अजामिल का उदाहरण गुरुवाणी में भी आता है, वो नाम नहीं लेता था. वैसे वह पंडित था, कोई अज्ञानी नहीं था. लेकिन भीतर में उसके संस्कार थे. उन संस्कारों के कारण वह मोहग्रस्त हो गया, शरीर के रसास्वादन में फंस गया. ईश्वर कृपा से महापुरुष आये और उन्होंने अजामिल को प्रेरणा दी कि तुम नारायण को, जिसके तुम रूप हो, जिसने तुम्हे बनाया है. उसका आभार प्रकट करो, उसकी याद करो. लिखने वाले ने लिख दिया और पढ़ने वाले ने समझा कि उसने अपने बेटे नारायण का नाम लिया और बस इतना कहने से ही उसका उद्धार हो गया.

मैं कल ही एक जगह गया था. वहां पंडित जी प्रवचन दे रहे थे कि भगवान के दोनों रूप होते हैं - यमराज और धर्मराज . भगवान उनके लिए यमराज बन जाते हैं जो दुष्ट नराधम हैं, किन्तु जो भले लोग होते हैं, भगवान उनके लिए धर्मराज बन जाते हैं. हिसाब-किताब दोनों का है. बात छोटी सी है, इसको ध्यान से सुनें और मनन करें और प्रभु के गुणों को सराहें. संत रविदास ने कहा है - " हर कीरत हमरो रैदास ". गुरु नानक भी कहते हैं कि "मेरी जायदाद भला क्या है ? मेरी सम्पत्ति भला क्या है ? मैने कोई महल नहीं बनाये, मैने कोई बगीचे नहीं बनाये, जो था भी सब छोड़ दिया. तो मेरी सम्पत्ति क्या है ? " हर कीरत हमरी रैदास ".- प्रभु के गुणों का गुणगान करना, उसका कीर्तन करके हर वक्त उसका सुमिरन करना- यही मेरी सम्पति है. वह अपने सारे जीवन भर प्रभु का गुणगान करते रहे. वह कभी-कभी आत्म-रस में इतने विभोर हो जाते थे कि कई-कई दिन तक आत्मसमाधि में ही लीन रहते थे.

हम भी स्तुति-गान करें - खूब करें, पर इसके साथ -साथ अपने अवगुणों को भी देखते चलें. पूज्य लाला जी महाराज का कथन था - दो रास्ते हैं, एक ज्ञान का और दूसरा प्रेम साधना का. दो चादरें बिछीं हैं काँटों पर. एक रास्ता यह है कि चादर को तुरंत ही उठा दें - यह रास्ता है ज्ञान का, जो सबके लिए सरल नहीं है. दूसरा रास्ता है कि चादर में से काँटों को एक-एक करके धीरे-धीरे निकलते जाएँ. यह तरीक़ा है भक्तो का जिसमें स्तुति करते हुए धीरे -धीरे अपनी ज़िंदगी से निन्दा, आलोचना और प्रतिक्रिया जेसे अवगुणों के कांटे निकाल फेंकें और अपनी आत्मा की चादर को साफ़ कर लें.

गुरुदेव आपका कल्याण करें .

राम सन्देश - मार्च १९९५